7

मूल अधिकार (Fundamental Rights)

संविधान के भाग 3 में अनुच्छेद 12 से 35 तक मूल अधिकारों का विवरण है। इस संबंध में संविधान निर्माता अमेरिकी संविधान (यानि अधिकार के विधेयक से) से प्रभावित रहे।

संविधान के भाग 3 को 'भारत का मैग्नाकार्टा'[1] की संज्ञा दी गयी है, जो सर्वथा उचित है। इसमें एक लंबी एवं विस्तृत सूची में 'न्यायोचित' मूल अधिकारों का उल्लेख किया गया है। वास्तव में मूल अधिकारों के संबंध में जितना विस्तृत विवरण हमारे संविधान में प्राप्त होता है, उतना विश्व के किसी देश में नहीं मिलता; चाहे वह अमेरिका ही क्यों न हो।

संविधान द्वारा बिना किसी भेदभाव के हर व्यक्ति के लिए मूल अधिकारों के संबंध में गारंटी दी गई है। इनमें प्रत्येक व्यक्ति के लिए समानता, सम्मान, राष्ट्रहित और राष्ट्रीय एकता को समाहित किया गया है।

मूल अधिकारों का तात्पर्य राजनीतिक लोकतंत्र के आदर्शों की उन्नति से है। ये अधिकार देश में व्यवस्था बनाए रखने एवं राज्य के कठोर नियमों के खिलाफ नागरिकों की आज़ादी की सुरक्षा करते हैं। ये विधानमंडल के कानून के क्रियान्वयन पर तानाशाही को मर्यादित करते हैं। संक्षेप में इनके प्रावधानों का उद्देश्य कानून की सरकार बनाना है न कि व्यक्तियों की।

मूल अधिकारों को यह नाम इसलिए दिया गया है, क्योंकि इन्हें संविधान द्वारा गारंटी एवं सुरक्षा प्रदान की गई है, जो राष्ट्र कानून का मूल सिद्धांत है। ये 'मूल' इसलिए भी हैं क्योंकि ये व्यक्ति के चहुंमुखी विकास (भौतिक, बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक) के लिए आवश्यक हैं।

मूल रूप से संविधान ने सात मूल अधिकार प्रदान किए:

1. समता का अधिकार (अनुच्छेद 14–18)।
2. स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19–22)।
3. शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23–24)।
4. धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25–28)।
5. संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार (अनुच्छेद 29–30)।
6. संपत्ति का अधिकार (अनुच्छेद 31)।
7. सांविधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)।

हालांकि, संपत्ति के अधिकार को 44वें संविधान अधिनियम, 1978 द्वारा मूल अधिकारों की सूची से हटा दिया गया है। इसे संविधान के भाग XII में अनुच्छेद 300-क के तहत कानूनी अधिकार बना दिया गया है। इस तरह फिलहाल छह मूल अधिकार हैं।

मूल अधिकारों की विशेषताएं

मूल अधिकारों को संविधान में निम्नलिखित विशेषताओं के साथ सुनिश्चित किया गया है:

1. उनमें से कुछ सिर्फ नागरिकों के लिए उपलब्ध हैं, जबकि कुछ अन्य सभी व्यक्तियों के लिए उपलब्ध हैं चाहे वे नागरिक, विदेशी लोगों या कानूनी व्यक्ति, जैसे-परिषद् एवं कंपनियां हों।

2. ये असीमित नहीं है, लेकिन वादयोग्य होते हैं। राज्य उन पर युक्तियुक्त प्रतिबंध लगा सकता है। हालांकि ये कारण उचित है या नहीं इसका निर्णय अदालत करती है। इस तरह ये व्यक्तिगत अधिकारों एवं पूरे समाज के बीच संतुलन कायम करते हैं। यह संतुलन व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं सामाजिक नियंत्रण के बीच होता है।

3. कुछ मामलों को छोड़कर इनमें से ज्यादातर अधिकार राज्य के मनमाने रवैये के खिलाफ हैं, जैसे-राज्य के खिलाफ कोई कार्यवाही या व्यक्ति के खिलाफ कार्रवाई। जब अधिकार राज्य कार्यवाही के खिलाफ हों और किसी व्यक्ति द्वारा इसका उल्लंघन हो रहा हो, तो वे संवैधानिक उपाय नहीं, बल्कि व्यक्तिगत प्रतिकार हैं।

4. इनमें से कुछ नकारात्मक विशेषताओं वाले होते हैं, जैसे-राज्य के प्राधिकार को सीमित करने से संबंधित; जबकि कुछ सकारात्मक होते हैं, जैसे-व्यक्तियों के लिए विशेष सुविधाओं का प्रावधान।

5. ये न्यायोचित हैं। ये व्यक्तियों को अदालत जाने की अनुमति देते हैं। जब भी इनका उल्लंघन होता है।

6. इन्हें उच्चतम न्यायालय द्वारा गारंटी व सुरक्षा प्रदान की जाती है। हालांकि पीड़ित व्यक्ति सीधे उच्चतम न्यायालय जा सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि केवल उच्च न्यायालय के खिलाफ ही वहां अपील को लेकर जाया जाये।

7. ये स्थायी नहीं हैं। संसद इनमें कटौती या कमी कर सकती है लेकिन संशोधन अधिनियम के तहत, न कि साधारण विधेयक द्वारा। यह सब संविधान के मूल ढांचे को प्रभावित किए बिना किया जा सकता है (मूल अधिकारों के संशोधन को अध्याय 11 में विस्तार से वर्णित किया गया है)।

8. राष्ट्रीय आपातकाल की सक्रियता के दौरान (अनुच्छेद 20 और 21 में प्रत्याभूत अधिकारों को छोड़कर) इन्हें निलंबित किया जा सकता है। अनुच्छेद 19 में उल्लिखित 6 मूल अधिकारों को तब स्थगित किया जा सकता है, जब युद्ध या विदेशी आक्रमण के आधार पर राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा की गई हो। इसे सशस्त्र विद्रोह (आंतरिक आपातकाल) के आधर पर स्थगित नहीं किया जा सकता। (राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान मूल अधिकारों का निलंबन अध्याय 16 में विस्तार से वर्णित किया गया है।)

9. अनुच्छेद 31क (संपत्ति आदि के अधिग्रहण पर कानून की रक्षा) द्वारा इनके कार्यान्वयन की सीमाएं हैं। अनुच्छेद 31ख (कुछ अधिनियमों और विनियमों का विधि मान्यीकरण 9वीं सूची में शामिल किया गया) एवं अनुच्छेद 31ग (कुछ कुछ निदेशक तत्वों को प्रभावी करने वाली विधियों की व्यावृत्ति) आदि।

10. सशस्त्र बलों, अर्द्ध सैनिक बलों, पुलिस बलों, गुप्तचर संस्थाओं और ऐसी ही सेवाओं से संबंधित सेवाओं के क्रियान्वयन पर संसद प्रतिबंध आरोपित कर सकती है (अनुच्छेद 33)।

11. ऐसे इलाकों में भी इनका क्रियान्वयन रोका जा सकता है, जहां फौजी कानून प्रभावी हो। फौजी कानून का मतलब 'सैन्य शासन' से है, जो असामान्य परिस्थितियों में लगाया जाता है (अनुच्छेद 34)। यह राष्ट्रीय आपातकाल से भिन्न है।

12. इनमें से ज्यादातर अधिकार स्वयं प्रवर्तित हैं, जबकि कुछ को कानून की मदद से प्रभावी बनाया जाता है। ऐसा कानून देश की एकता के लिये संसद द्वारा बनाया जाता है, न कि विधान मंडल द्वारा ताकि संपूर्ण देश में एकरूपता बनी रहे (अनुच्छेद 35)।

राज्य की परिभाषा

मूल अधिकारों से संबंधित विभिन्न उपबंधों में 'राज्य' शब्द का प्रयोग किया गया है। इस तरह इसे अनुच्छेद 12 में भाग-III के उद्देश्य के तहत परिभाषित किया गया है। इसके अनुसार राज्य में निम्नलिखित शामिल हैं:

(अ) कार्यकारी एवं विधायी अंगों को संघीय सरकार में क्रियान्वित करने वाली सरकार और भारत की संसद।

(ब) राज्य सरकार के विधायी अंगों को प्रभावी करने वाली सरकार और राज्य विधानमंडल।

(स) सभी स्थानीय निकाय अर्थात् नगरपालिकाएं, पंचायत, जिला बोर्ड सुधार न्यास आदि।

(द) अन्य सभी निकाय अर्थात् वैधानिक या गैर-संवैधानिक प्राधिकरण, जैसे-एलआईसी, ओएनजीसी, सेल आदि।

इस तरह राज्य को विस्तृत रूप में परिभाषित किया गया है। इसमें शामिल इकाइयों के कार्यों को अदालत में तब चुनौती दी जा सकती है, जब मूल अधिकारों का हनन हो रहा हो।

उच्चतम न्यायालय के अनुसार, किसी भी उस निजी इकाई या एजेंसी को, जो बतौर राज्य की संस्था काम कर रही हो, वह अनुच्छेद 12 के तहत 'राज्य' के अर्थ में आती है।

मूल अधिकारों से असंगत विधियां

अनुच्छेद 13 घोषित करता है कि मूल अधिकारों से असंगत या उनका अल्पीकरण करने वाली विधियां शून्य होंगी। दूसरे शब्दों में, ये न्यायिक समीक्षा योग्य हैं। यह शक्ति उच्चतम न्यायालय (अनुच्छेद 32) और उच्च न्यायालयों (अनुच्छेद 226) को प्राप्त है, जो किसी विधि को मूल अधिकारों का उल्लंघन होने के आधार पर गैर-संवैधानिक या अवैध घोषित कर सकते हैं।

अनुच्छेद 13 के अनुसार, 'विधि' शब्द को निम्नलिखित में शामिल कर व्यापक रूप दिया गया है:

(अ) स्थायी विधियां, संसद या राज्य विधानमंडल द्वारा पारित।

(ब) अस्थायी विधियां, जैसे-राज्यपालों या राष्ट्रपति द्वारा जारी अध्यादेश।

(स) प्रत्यायोजित विधान (कार्यपालिका विधान) की प्रकृति में सांविधानिक साधन जैसे-अध्यादेश, आदेश, उपविधि, नियम, विनियम या अधिसूचना।

(द) विधि के गैर-विधायी स्रोत, जैसे—विधि का बल रखने वाली रूढ़ि या प्रथा।

न केवल विधान बल्कि उपरोक्त में से किसी को अदालत में मूल अधिकारों के हनन पर चुनौती दी जा सकती है, अवैध घोषित किया जा सकता है।

तालिका 7.1 *मूल अधिकार: एक नजर में*

श्रेणी	निहित हैं
1. समता का अधिकार (अनुच्छेद 14-18)	(a) विधि के समक्ष समता एवं विधियों का समान संरक्षण (अनुच्छेद 14)। (b) धर्म, मूल वंश, लिंग और जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध (अनुच्छेद 15)। (c) लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता (अनुच्छेद 16)। (d) अस्पृश्यता का अंत और उसका आचरण निषिद्ध (अनुच्छेद 17)। (e) सेना या विद्या संबंधी सम्मान के सिवाए सभी उपाधियों पर रोक (अनुच्छेद 18)।
2. स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19-22)	(a) छह अधिकारों की सुरक्षा (I) वाक् एवं अभिव्यक्ति, (II) सम्मेलन, (III) संघ, (IV) संचरण, (V) निवास, (VI) वृत्ति (अनुच्छेद 19)। (b) अपराधों के लिए दोष सिद्धि के संबंध में संरक्षण (अनुच्छेद 20)। (c) प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण (अनुच्छेद 21)। (d) प्रारंभिक शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 21)। (e) कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण (अनुच्छेद 22)।
3. शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23-24)	(a) बलात् श्रम का प्रतिषेध (अनुच्छेद 23)। (b) कारखानों आदि में बच्चों के नियोजन का प्रतिषेध (अनुच्छेद 24)।
4. धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25-28)	(a) अंत:करण की और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 25)। (b) धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 26)। (c) किसी धर्म की अभिवृद्धि के लिए करों के संदाय के बारे में स्वतंत्रता (अनुच्छेद 27)।

	(d) कुछ शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के बारे में स्वतंत्रता (अनुच्छेद 28)।
5. संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार (अनुच्छेद 29–30)	(a) अल्पसंख्यकों की भाषा, लिपि और संस्कृति की सुरक्षा (अनुच्छेद 29)। (b) शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक वर्गों का अधिकार (अनुच्छेद 30)।
6. सांविधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)	मूल अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए उच्चतम न्यायालय जाने का अधिकार। इसमें शामिल याचिकाएं हैं–(i) बंदी प्रत्यक्षीकरण, (ii) परमादेश, (iii) प्रतिषेध, (iv) उत्प्रेषण, (v) अधिकार पृच्छा (अनुच्छेद 32)।

तालिका 7.2 *विदेशियों के मूल अधिकार*

केवल नागरिकों को प्राप्त मूल अधिकार जो विदेशियों को प्राप्त नहीं हैं	नागरिकों एवं विदेशियों को प्राप्त मूल अधिकार (शत्रु देश के लोगों को छोड़कर)
1. केवल धर्म, मूल वंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या के आधार पर विभेद का प्रतिषेध (अनुच्छेद 15)।	1. विधि के समक्ष समता और विधियों का समान संरक्षण (अनुच्छेद 14)
2. लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता (अनुच्छेद 16)।	2. अपराधों के लिये दोषसिद्धी के संबंध में संरक्षण (अनुच्छेद 20)।
3. विचार, अभिव्यक्ति, शांतिपूर्ण सम्मेलन, निर्बाध विचरण एवं निवास तथा संघ बनाने की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 19)।	3. प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण (अनुच्छेद 21)।
4. अल्पसंख्यकों को शिक्षा एवं संस्कृति संबंधी (अनुच्छेद 29)।	4. प्रारंभिक शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 21क)।
5. अल्पसंख्यकों को अपने धर्म के प्रसार हेतु शिक्षण संस्थाओं की स्थापना का अधिकार (अनुच्छेद 30)।	5. कुछ मामलों में हिरासत एवं नजरबंदी से संरक्षण (अनुच्छेद 22)।
	6. बलात् श्रम एवं अवैध मानव व्यापार के विरुद्ध प्रतिषेध (अनुच्छेद 23)।
	7. कारखानों आदि में बच्चों के नियोजन का प्रतिषेध (अनुच्छेद 24)।
	8. धर्म की अभिवृद्धि के लिए प्रयास करने की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 25)।
	9. धार्मिक संस्थाओं के संचालन की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 26)।
	10. किसी धर्म को प्रोत्साहित करने हेतु कर से छूट (अनुच्छेद 27)।
	11. कुछ विशिष्ट संस्थाओं में धार्मिक आदेशों को जारी करने की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 28)।

इस तरह अनुच्छेद 13 घोषित करता है कि संविधान संशोधन कोई विधि नहीं है इसलिए उसे चुनौती नहीं दी जा सकती। यद्यपि उच्चतम न्यायालय ने केशवानंद भारती मामले (1973)[2] में कहा कि मूल अधिकारों के हनन के आधार पर संविधान संशोधन को चुनौती दी जा सकती है। यदि वह संविधान के मूल ढांचे के खिलाफ हो तो उसे अवैध घोषित किया जा सकता है।

समानता का अधिकार

1. विधि के समक्ष समता और विधियों का समान संरक्षण

अनुच्छेद 14 में कहा गया है कि राज्य भारत के राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह नागरिक हो या विदेशी सब पर यह अधिकार लागू होता है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति शब्द में विधिक व्यक्ति अर्थात् सांविधानिक निगम, कपंनियां, पंजीकृत समितियां या किसी भी अन्य तरह का विधिक व्यक्ति सम्मिलित हैं।

'विधि के समक्ष समता' का विचार ब्रिटिश मूल का है, जबकि 'विधियों के समान संरक्षण' को अमेरिका के संविधान से लिया गया है। पहले संदर्भ में शामिल है—**(अ)** किसी व्यक्ति के पक्ष में विशिष्ट विशेषाधिकारों की अनुपस्थिति। **(ब)** साधारण विधि या साधारण विधि न्यायालय के तहत सभी व्यक्तियों के लिए समान व्यवहार। **(स)** कोई व्यक्ति (अमीर-गरीब, ऊंचा-नीचा, अधिकारी-गैर-अधिकारी) विधि के ऊपर नहीं है।

दूसरे संदर्भ में निहित है—**(अ)** विधियों द्वारा प्रदत्त विशेषाधिकारों और अध्यारोपित दायित्वों दोनों में समान परिस्थितियों के अंतर्गत व्यवहार समता, **(ब)** समान विधि के अंतर्गत सभी व्यक्तियों के लिए समान नियम हैं, और **(स)** बिना भेदभाव के समान के साथ समान व्यवहार होना चाहिए। इस तरह पहला नकारात्मक संदर्भ है, जबकि दूसरा सकारात्मक। हालांकि दोनों का उद्देश्य विधि, अवसर और न्याय की समानता है।

उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि जहां समान एवं असमान के बीच अलग-अलग व्यवहार होता हो, अनुच्छेद 14 लागू नहीं होता। यद्यपि अनुच्छेद 14 श्रेणी विधान को अस्वीकृत करता है। यह विधि द्वारा व्यक्तियों, वस्तुओं और लेन-देनों के तर्कसंगत वर्गीकरण को स्वीकृत करता है। लेकिन वर्गीकरण विवेक शून्य, बनावटी नहीं होना चाहिए। बल्कि विवेकपूर्ण,सशक्त और पृथक् होना चाहिए।

विधि का शासन

ब्रिटिश न्यायवादी ए.वी. डायसी का मानना है कि 'विधि के समक्ष समता' का विचार 'विधि का शासन' के सिद्धांत का मूल तत्व है। इस संबंध में उन्होंने निम्न तीन अवधारणायें प्रस्तुत की हैं:

(i) इच्छाधीन शक्तियों की अनुपस्थिति अर्थात् किसी भी व्यक्ति को विधि के उल्लंघन के सिवाए दण्डित नहीं किया जा सकता।

(ii) विधि के समक्ष समता अत्यावश्यक है। कोई व्यक्ति (अमीर-गरीब, ऊंचा-नीचा, अधिकारी-गैर-अधिकारी) कानून के ऊपर नहीं है।[3]

(iii) व्यक्तिगत अधिकारों की प्रमुखता अर्थात् संविधान व्यक्तिगत अधिकारों का परिणाम है, जैसा कि न्यायालयों द्वारा इसे परिभाषित और लागू किया जाता है, नाकि संविधान व्यक्तिगत अधिकारों का स्रोत है।

पहले एवं दूसरे कारक ही भारतीय व्यवस्था में लागू हो सकते हैं, तीसरा नहीं। भारतीय व्यवस्था में संविधान ही भारत में व्यक्तिगत अधिकार का स्रोत है।

सर्वोच्च न्यायालय का मानना है कि अनुच्छेद 14 के अंतर्गत उल्लिखित विधि का शासन ही संविधान का मूलभूत तत्व है। इसलिये इसी किसी भी तरह, यहां तक कि संशोधन के द्वारा भी समाप्त नहीं किया जा सकता है।

समता के अपवाद

विधि के समक्ष समता का नियम, पूर्ण नहीं है तथा इसके लिये कई संवैधानिक निषेध एवं अन्य अपवाद हैं। इनका वर्णन इस प्रकार है:

1. भारत के राष्ट्रपति एवं राज्यपालों को निम्न शक्तियां प्राप्त हैं (अनुच्छेद 361 के अंतर्गत):

   (i) राष्ट्रपति या राज्यपाल अपने कार्यकाल में किये गये किसी कार्य या लिये गये किसी निर्णय के प्रति देश के किसी भी न्यायालय में जवाबदेह नहीं होंगे।

   (ii) राष्ट्रपति या राज्यपाल के विरुद्ध उसकी पदावधि के दौरान किसी न्यायालय में किसी भी प्रकार की दांडिक कार्यवाही प्रारंभ या चालू नहीं रखी जाएगी।

   (iii) राष्ट्रपति या राज्यपाल की पदावधि के दौरान उसकी गिरफ्तारी या कारावास के लिए किसी न्यायालय से कोई प्रक्रिया प्रारंभ नहीं की जा सकती।

(iv) राष्ट्रपति या राज्यपाल पर उनके कार्यकाल के दौरान व्यक्तिगत सामर्थ्य से किये गये किसी कार्य के लिये किसी भी न्यायालय में दीवानी का मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है। हां यदि इस प्रकार का कोई मुकदमा चलाया जाता है तो उन्हें इसकी सूचना देने के दो माह बाद ही ऐसा किया जा सकता है।

2. कोई भी व्यक्ति यदि संसद के या राज्य विधान सभा के दोनों सदनों या दोनों सदनों में से किसी एक की सत्य कार्यवाही से संबंधित विषय-वस्तु का प्रकाशन समाचार-पत्र में (या रेडियो या टेलिविजन में) करता है तो उस पर किसी भी प्रकार का दीवानी या फौजदारी का मुकदमा, देश के किसी भी न्यायालय में नहीं चलाया जा सकेगा (अनुच्छेद 361-क)।
3. संसद में या उसकी किसी समिति में संसद के किसी सदस्य द्वारा कही गई किसी बात या दिए गए किसी मत के संबंध में उसके विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी (अनुच्छेद 105)।
4. राज्य के विधानमण्डल में या उसकी किसी समिति में विधानमण्डल के किसी सदस्य द्वारा कही गई किसी बात या दिए गए किसी मत के संबंध में उसके विरुद्ध न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी। (अनुच्छेद 194)
5. अनुच्छेद 31-ग, अनुच्छेद-14 का अपवाद है। इसके अनुसार, किसी राज्य विधानमंडल द्वारा नीति निदेशक तत्वों के क्रियान्वयन के संबंध में यदि कोई नियम बनाया जाता है , जिसमें अनुच्छेद 39 की उपधारा (ख) या उपधारा (ग) का समावेश है तो उसे आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि वे अनुच्छेद-14 का उल्लंघन करते हैं। इस बारे में सर्वोच्च न्यायालय का कहना है कि 'जहां अनुच्छेद 31-ग आता है, वहां से अनुच्छेद-14 चला जाता है'।
6. विदेशी संप्रभु (शासक), राजदूत एवं कूटनीतिक व्यक्ति, दीवानी एवं फौजदारी मुकदमों से मुक्त होंगे।
7. संयुक्त राष्ट्र संघ एवं इसकी एजेन्सियों को भी कूटनीतिक मुक्ति प्राप्त है।

2. कुछ आधारों पर विभेद का प्रतिषेध

अनुच्छेद 15 में यह व्यवस्था दी गई है कि राज्य किसी नागरिक के प्रति केवल धर्म, मूल वंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान को लेकर विभेद नहीं करेगा। इसमें दो कठोर शब्दों की व्यवस्था है—'विभेद' और 'केवल'। 'विभेद' का अभिप्राय किसी के विरुद्ध विपरीत मामला या अन्य के प्रति उसके पक्ष में न रहना। 'केवल' शब्द का अभिप्राय है कि अन्य आधारों पर मतभेद किया जा सकता है।

अनुच्छेद 15 की दूसरी व्यवस्था में कहा गया है कि कोई नागरिक केवल धर्म, मूल वंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधर पर - (क) दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश; या (ख) पूर्णत: या भागत: राज्य-निधि से पोषित या साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नान घाटों, दायित्वों, निर्बंधन या शर्त के अधीन नहीं होगा। यह प्रावधान राज्य एवं व्यक्ति दोनों के विरुद्ध विभेद का प्रतिषेध करता है, जबकि पहले प्रावधान में केवल राज्य के विरुद्ध ही प्रतिषेध का वर्णन था।

विभेद से प्रतिषेध के इस सामान्य नियम के निम्न तीन अपवाद हैं:

(अ) राज्य को इस बात की अनुमति होती है कि वह बच्चों या महिलाओं के लिए विशेष व्यवस्था करे, उदाहरण के लिए स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था एवं बच्चों के लिए नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था शामिल है।

(ब) राज्य को इसकी अनुमति होती है कि वह सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों या अनुसूचित जाति एवं जनजाति के विकास के लिए कोई विशेष उपबंध करे।[4] उदाहरण के लिये, विधानमंडल में सीटों का आरक्षण या सार्वजनिक शैक्षणिक संस्थाओं में शुल्क से छूट शामिल हैं।

(स) राज्य को यह अधिकार है कि वह सामाजिक एवं शैक्षिक रूप से पिछडे. लोगों या अनुसूचित जाति या जनजाति के लोगों के उत्थान के लिये शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश के लिये छूट संबधी कोई नियम बना सकता है। ये शैक्षणिक संस्थान राज्य से अनुदान प्राप्त, निजी या अल्पसंख्यक किसी भी प्रकार के हो सकते हैं।

अंतिम प्रावधान को संविधान के 93वें संशोधन, 2005 द्वारा शामिल किया गया है। इस प्रावधान के क्रियान्वयन के लिये केंद्र सरकार ने केंद्रीय शैक्षणिक संस्थान (प्रवेश में आरक्षण) अधिनियम, 2006 पारित किया है, जिसके अंतर्गत पिछड़े वर्ग के छात्रों के लिये सभी उच्च शैक्षणिक संस्थानों में 27 सीटें आरक्षित की गयी हैं। इनमें आईआईटी एवं आईआईएम जैसे संस्थान भी शामिल हैं। अप्रैल

2008 में, उच्चतम न्यायालय ने दोनों अधिनियमों की वैधता पर मुहर लगा दी है, लेकिन न्यायालय ने केंद्र सरकार को यह आदेश दिया है कि वह इसमें 'क्रीमीलेयर के सिद्धांत' का पालन करे।

क्रीमीलेयर

पिछड़े वर्ग के विभिन्न तबकों के छात्र क्रीमीलेयर में आते हैं, जिन्हें इस आरक्षण का लाभ नहीं मिलेगा। ये तबके हैं:

1. संवैधानिक पद धारण करने वाले व्यक्ति, जैसे कि राष्ट्रपति उप-राष्ट्रपति, उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश, संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्य, राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्य, मुख्य निर्वाचन आयुक्त, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक आदि।
2. वर्ग ए या ग्रुप ए तथा ग्रुप बी की सेवा के क्लास II अधिकारी, जो कि केंद्रीय या राज्य सेवाओं में हैं। इसके अलावा सार्वजनिक प्रतिष्ठानों, बैंकों, बीमा कंपनियों, विश्वविद्यालयों आदि में पदस्थ समकक्ष अधिकारी आदि। यह नियम निजी कंपनियों में कार्यरत अधिकारियों पर भी लागू होता है।
3. सेना में कर्नल या उससे ऊपर के रैंक का अधिकारी या नौसेना, वायु सेना एवं अर्द्ध-सैनिक बलों में समान रैंक का अधिकारी।
4. डॉक्टर, अधिवक्ता, इंजीनियर, कलाकार, लेखक, सलाहकार आदि प्रकार के पेशेवर।
5. व्यापार, वाणिज्य एवं उद्योग में लगे व्यक्ति।
6. शहरी क्षेत्रों में जिन लोगों के पास भवन हैं तथा जिनके पास एक निश्चित सीमा से अधिक की कृषि भूमि या रिक्त भूमि रखने वाले।
7. जिन लोगों की सालाना आय 4.5 लाख से अधिक है या जिनके पास एक छूट सीमा से अधिक की संपत्ति है। 1993 में जबकि 'मलाईदार परत (creamy layer)' हदबंदी लागू की गई, यह 1 लाख थी। बाद में 2004 में इसे बढ़ाकर 2.5 लाख तथा 2008 में 4.5 लाख एवं 6 लाख रुपये 2013 में किया गया।

3. लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता

अनुच्छेद 16 में राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित विषयों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी। किसी भी नागरिक के साथ भेदभाव नहीं किया जा सकता या केवल धर्म, वंश, जाति, लिंग, जन्म का स्थान, या निवास के स्थान के आधार पर राज्य के किसी भी रोजगार एवं कार्यालय के लिए अयोग्य नहीं ठहराया जाएगा।

लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता के साधारण नियम में तीन अपवाद हैं:

(अ) संसद किसी विशेष रोजगार के लिए निवास की शर्त आरोपित कर सकती है। जैसा कि सार्वजनिक रोजगार (जिसमें निवास की जरूरत हो) अधिनियम 1957 कुछ वर्ष बाद 1974 में समाप्त हो गया। इस समय आंध्र प्रदेश[5] एवं तेलंगाना[5a] के अतिरिक्त किसी अन्य राज्य में यह व्यवस्था नहीं है।

(ब) राज्य नियुक्तियों के आरक्षण की व्यवस्था कर सकता है या किसी पद को पिछड़े वर्ग के पक्ष में बना सकता है जिनका कि राज्य में समान प्रतिनिधित्व नहीं है।

(स) विधि के तहत किसी संस्था या इसके कार्यकारी परिषद के सदस्य या किसी की धार्मिक आधार पर व्यवस्था की जा सकती है।

मंडल आयोग और उसके परिणाम

वर्ष 1979 में मोरारजी देसाई सरकार ने द्वितीय पिछड़ा वर्ग आयोग[6] का गठन संसद सदस्य बी.पी. मंडल की अध्यक्षता में किया। अनुच्छेद 340 के तहत संविधान पिछड़े वर्गों के लोगों की शैक्षणिक एवं सामाजिक स्थिति की जांच करते हुए उनकी उन्नति के लिए सुझाव प्रस्तुत करने की व्यवस्था करता है। आयोग ने अपनी रिपोर्ट 1980 में प्रस्तुत की और 3743 जातियों की पहचान की जो सामाजिक एवं शैक्षणिक आधार पर पिछड़ी थीं। जनसंख्या में उनका हिस्सा करीब 52 प्रतिशत था जिसमें अनुसूचित जाति एवं जनजाति शामिल नहीं है। आयोग ने अन्य पिछड़े वर्गों के लोगों के लिए सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत आरक्षण की सिफारिश की। इस तरह संपूर्ण आरक्षण (अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों का) 50 प्रतिशत[7] हो गया। दस वर्ष पश्चात् 1990 में वी.पी. सिंह सरकार ने सरकारी सेवाओं में अन्य पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण की घोषणा कर दी। दोबारा 1991 में नरसिंहराव सरकार ने दो परिवर्तन प्रस्तुत किए (क) 27 प्रतिशत में पिछड़े वर्ग के गरीब लोगों को प्रमुखता जैसे आर्थिक आधार पर आरक्षण और (ख) 10 प्रतिशत का अतिरिक्त आरक्षण गरीबों के लिए (आर्थिक रूप के पिछड़े) विशेष रूप से उच्च जातियों में आर्थिक रूप से कमजोरों के लिए भी व्यवस्था की।

प्रसिद्ध मंडल केस (1992)[8] में, अनुच्छेद 16 (4) के विस्तार एवं व्यवस्था पिछड़े वर्गों के पक्ष में जिस रोजगार आरक्षण की

व्यवस्था की गई है उसका परीक्षण उच्चतम न्यायालय द्वारा किया गया। यद्यपि न्यायालय ने उच्च जातियों के खास वर्ग के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था को अस्वीकार कर दिया, फिर भी अन्य पिछड़े वर्गों के लिए कुछ शर्तों के साथ 27 प्रतिशत आरक्षण की संवैधानिक वैधता को बनाए रखा।

(अ) अन्य पिछड़े वर्गों के क्रीमीलेयर से संबंधित लोगों को आरक्षण की सुविधा से बाहर रखा जाना चाहिए।

(ब) प्रोन्नति में कोई आरक्षण नहीं, आरक्षण की व्यवस्था केवल शुरुआती नियुक्ति के समय होनी चाहिए। प्रोन्नति के लिए कोई खास आरक्षण केवल पांच वर्षों तक लागू रह सकता है (1997 तक)।

(स) केवल कुछ असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर। कुल आरक्षित कोटा 50 प्रतिशत से ज्यादा नहीं होना चाहिए। यह नियम प्रत्येक वर्ष लागू होना चाहिए।

(द) आगे ले जाने का नियम (कैरी फॉरवर्ड नियम) रिक्त पदों (बैकलॉग) के लिए वैध रहेगा। लेकिन इसमें भी 50 प्रतिशत के सिद्धांत का उल्लंघन नहीं होना चाहिए।

(इ) अन्य पिछड़े वर्गों की सूची में अति जोड़ (over inclusion) या न्यून जोड़ (under inclusion) के परीक्षण के लिए एक स्थायी गैर–विधायी इकाई होनी चाहिए।

उच्चतम न्यायालय की उपरोक्त व्यवस्था के बाद सरकार ने निम्नलिखित कदम उठाए:

(अ) अन्य पिछड़े वर्गों में क्रीमीलेयर की पहचान के लिए राम नंदन समिति का गठन किया। इसने 1993 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसे स्वीकार कर लिया गया।

(ब) संसद के एक अधिनियम द्वारा 1993 में पिछड़े वर्गों के लिए राष्ट्रीय आयोग का गठन किया गया। यह नौकरी आरक्षण के उद्देश्य से सूची में नाम जोड़ने व निकालने पर विचार करता है।

(स) प्रोन्नति में आरक्षण को समाप्त करने के मामले में 77वें संशोधन अधिनियम को 1995 में पास कराया गया। इसने अनुच्छेद 16 में नई व्यवस्था जोड़ी। इसके तहत राज्यों को शक्ति प्रदान की गई कि राज्य सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व न होने की स्थिति में राज्य के अंतर्गत सेवाओं में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति को प्रोन्नति में आरक्षण दिया जा सकता है। 2001 का 85वां संशोधन अधिनियम अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति सरकारी सेवकों हेतु आरक्षण नियम के तहत प्रोन्नति के मामले में परिणामिक वरिष्ठता की व्यवस्था करता है। इसे पूर्वगामी जून, 1955 से प्रभावी किया गया।

(द) बैकलॉग रिक्तियों के संबंध में निर्णय को 81वें संशोधन अधिनियम 2000 के तहत रद्द किया गया। इसने अनुच्छेद 16 में एक और व्यवस्था को जोड़ा। इससे राज्य ने रिक्त आरक्षित पदों को अनुवर्ती वर्ष या वर्षों में भरने के लिए शक्तिशाली बनाया। इस तरह के आरक्षित वर्ग को उस वर्ष के, जिसमें भर्तियां हुईं, साथ नहीं जोड़ा गया ताकि आरक्षण की 50 प्रतिशत की सीमा का पालन किया जा सके। संक्षेप में, इसने बैकलॉग रिक्तियों में आरक्षण की 50 प्रतिशत सीमा को समाप्त कर दिया।

(इ) 76वें संशोधन अधिनियम 1994 ने तमिलनाडु आरक्षण अधिनियम,[9] 1994 9वीं सूची में न्यायिक समीक्षा के तहत 69 प्रतिशत आरक्षण को 50 प्रतिशत के स्थान पर स्थापित कर दिया गया।

4. अस्पृश्यता का अंत

अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता को समाप्त करने की व्यवस्था और किसी भी रूप में इसका आचरण निषिद्ध करता है। अस्पृश्यता से उपजी किसी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा, जो विधि अनुसार दंडनीय होगा।

1976 में, अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 में मूलभूत संशोधन किया गया और इसको नया नाम 'नागरिक अधिकारों की रक्षा अधिनियम 1955' दिया गया तथा इसमें विस्तार कर दंडिक उपबंध और सख्त बनाए गए। अधिनियम में अस्पृश्यता के प्रत्येक प्रकार को समाप्त करते हुए अनुच्छेद 17 में व्यवस्था सुनिश्चित की गई।

'अस्पृश्यता' शब्द को न तो संविधान में और न ही अधिनियम में परिभाषित किया गया। हालांकि मैसूर उच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 17 के मामले में व्यवस्था दी कि शाब्दिक एवं व्याकरणीय समझ से परे इसका प्रयोग ऐतिहासिक है। इसका संदर्भ है कि कुछ वर्गों के कुछ लोगों को उनके जन्म एवं कुछ जातियों के आधार सामाजिक निर्योग्यता। अत: यह कुछ व्यक्तियों के सामाजिक, बहिष्कार और धर्म संबंधी सेवाओं इत्यादि से इनका बहिष्कार नहीं है।

जन अधिकार सुरक्षा अधिनियम (1955) के अंतर्गत छुआछूत को दंडनीय अपराध घोषित किया गया। इसके तहत 6 माह का कारावास या 500 रुपये का दंड अथवा दोनों शामिल हैं। जो व्यक्ति इसके तहत दोषी करार दिया जाए, उसे संसद या राज्य विधानमंडल चुनाव के लिए अयोग्य करार देने की व्यवस्था की गई।

यह अधिनियम निम्नलिखित को अपराध मानता है—

(क) किसी व्यक्ति को सार्वजनिक पूजा स्थल में प्रवेश से रोकना या कहीं पर पूजा से रोकना।

(ख) परंपरागत, धार्मिक, दार्शनिक या अन्य आधार पर 'अस्पृश्यता' को न्यायोचित ठहराना।

(ग) किसी दुकान, होटल या सार्वजनिक मनोरंजन स्थल में प्रवेश से इंकार करना।

(घ) 'अस्पृश्यता' के आधार पर अनुसूचित जाति के किसी व्यक्ति की बेइज्जती करना।

(ङ) अस्पतालों, शैक्षणिक संस्थानों या हॉस्टल में सार्वजनिक हित के लिए प्रवेश से रोकना।

(च) प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अस्पृश्यता को मानना।

(छ) किसी व्यक्ति को सामान बिक्री या सेवाएं देने से रोकना।

उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 17 के तहत यह व्यवस्था दी कि यह अधिकार निजी व्यक्ति और राज्य का संवैधानिक दायित्व होगा कि इस अधिकार के हनन को रोकने के लिए जरूरी कदम उठाएं।

5. उपाधियों का अंत

अनुच्छेद 18 उपाधियों का अंत करता है और इस संबंध में चार प्रावधान करता है:

1. यह निषेध करता है कि राज्य सेना या विद्या संबंधी सम्मान के सिवाएं और कोई उपाधि प्रदान नहीं करेगा।
2. यह निषेध करता है कि भारत का कोई नागरिक विदेशी राज्य से कोई उपाधि प्राप्त नहीं करेगा।
3. कोई विदेशी, राज्य के अधीन लाभ या विश्वास के किसी पद को धारण करते हुए किसी विदेशी राज्य से कोई भी उपाधि राष्ट्रपति की सहमति के बिना स्वीकार नहीं करेगा।
4. राज्य के अधीन लाभ या विश्वास का पद धारण करने वाला कोई व्यक्ति किसी विदेशी राज्य से या उसके अधीन किसी रूप में कोई भेंट, उपलब्धि या पद राष्ट्रपति की सहमति के बिना स्वीकार नहीं करेगा।

उपरोक्त प्रावधानों में यह स्पष्ट किया गया कि औपनिवेशिक राज्य के समय दिए जाने वाले वंशानुगत पद, जैसे-महाराजा, राज बहादुर, राय बहादुर, राज साहब, दीवान बहादुर आदि को अनुच्छेद 18 के तहत प्रतिबंधित किया गया क्योंकि ये सब राज्य के समक्ष समानता के अधिकार के विरुद्ध थे।

1996[10] में उच्चतम न्यायालय ने जिन उपलब्धियों की संवैधानिक वैधता को उचित ठहराया था, उनमें पद्म विभूषण, पद्म भूषण एवं पद्म श्री हैं। न्यायालय ने कहा कि ये पुरस्कार उपाधि नहीं हैं तथा अनुच्छेद 18 में वर्णित प्रावधानों का इनसे उल्लंघन नहीं होता है। इस तरह ये समानता के सिद्धांत के प्रतिकूल नहीं हैं। हालांकि यह भी व्यवस्था की गई कि पुरस्कार पाने वालों के नाम के प्रत्यय या उपसर्ग के रूप में इनका इस्तेमाल नहीं होना चाहिए, अन्यथा उन्हें पुरस्कारों को त्यागना होगा।

इन राष्ट्रीय पुरस्कारों की संस्थापना 1954 में हुई। 1977 में मोरारजी देसाई के नेतृत्व वाली जनता पार्टी ने उनका क्रम तोड़ दिया लेकिन 1980 में इंदिरा गांधी सरकार द्वारा उन्हें पुनः प्रारंभ कर दिया गया।

स्वतंत्रता का अधिकार

1. छह अधिकारों की रक्षा

अनुच्छेद 19 सभी नागरिकों को छह अधिकारों की गारंटी देता है। ये हैं:

(i) वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता।

(ii) शांतिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का अधिकार।

(iii) संगम संघ या सहकारी समितियां[10a] बनाने का अधिकार।

(iv) भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण का अधिकार।

(v) भारत के राज्य क्षेत्र के किसी भाग में निर्बाध घूमने और बस जाने या निवास करने का अधिकार।

(vi) कोई भी वृत्ति, व्यापार या कारोबार करने का अधिकार।

मूलतः अनुच्छेद 19 में 7 अधिकार थे, लेकिन संपत्ति को खरीदने, अधिग्रहण करने या बेच देने के अधिकार को 1978 में 44वें संशोधन अधिनियम के तहत समाप्त कर दिया गया।

इन छह अधिकारों की रक्षा केवल राज्य के खिलाफ मामले में है न कि निजी मामले में। अर्थात् ये अधिकार केवल नागरिकों और कंपनी के शेयर धारकों के लिए हैं, न कि विदेशी या कानूनी

लोगों जैसे कंपनियों या परिषदों के लिए।

राज्य इन छह अधिकारों पर अनुच्छेद 19 में उल्लिखित आधारों पर 'उचित' प्रतिबंध लगा सकता है।

वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

यह प्रत्येक नागरिक को अभिव्यक्ति दर्शाने, मत देने, विश्वास एवं अभियोग लगाने की मौखिक, लिखित, छिपे हुए मामलों पर स्वतंत्रता देता है। उच्चतम न्यायालय ने वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में निम्नलिखित को सम्मिलित किया:

(i) अपने या किसी अन्य के विचारों को प्रसारित करने का अधिकार।
(ii) प्रेस की स्वतंत्रता।
(iii) व्यावसायिक विज्ञापन की स्वतंत्रता।
(iv) फोन टैपिंग के विरुद्ध अधिकार।
(v) प्रसारित करने का अधिकार अर्थात् सरकार का इलैक्ट्रॉनिक मीडिया पर एकाधिकार नहीं है।
(vi) किसी राजनीतिक दल या संगठन द्वारा आयोजित बंद के खिलाफ अधिकार।
(vii) सरकारी गतिविधियों की जानकारी का अधिकार।
(viii) शांति का अधिकार।
(ix) किसी अखबार पर पूर्व प्रतिबंध के विरुद्ध अधिकार।
(x) प्रदर्शन एवं विरोध का अधिकार, लेकिन हड़ताल का अधिकार नहीं।

राज्य वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर उचित प्रतिबंध लगा सकता है। यह प्रतिबंध लगाने के आधार इस प्रकार हैं—भारत की एकता एवं संप्रभुता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों से मित्रवत संबंध, सार्वजनिक आदेश, नैतिकता की स्थापना, न्यायालय की अवमानना, किसी अपराध में संलिप्तता आदि।

शांतिपूर्वक सम्मेलन की स्वतंत्रता

किसी भी नागरिक को बिना हथियार के शांतिपूर्वक संगठित होने का अधिकार है। इसमें शामिल हैं-सार्वजनिक बैठकों में भाग लेने का अधिकार एवं प्रदर्शन। इस स्वतंत्रता का उपयोग केवल सार्वजनिक भूमि पर बिना हथियार के किया जा सकता है। यह व्यवस्था हिंसा, अव्यवस्था, गलत संगठन एवं सार्वजनिक शांति भंग के लिए नहीं है। इस अधिकार में हड़ताल का अधिकार शामिल नहीं है।

राज्य संगठित होने के अधिकार पर दो आधारों पर प्रतिबंध लगा सकता है—भारत की एकता अखंडता एवं सार्वजनिक आदेश, सहित संबंधित क्षेत्र में यातायात नियंत्रण।

आपराधिक व्यवस्था की धारा 144(1973) के अंतर्गत एक न्यायधीश किसी संगठित बैठक को किसी व्यवधान के खतरे के तहत रोक सकता है। इसे रोकने का आधार मानव जीवन के लिए खतरा, स्वास्थ्य एवं सुरक्षा, सार्वजनिक जीवन में व्यवधान या दंगा भड़काने का खतरा भी है।

भारतीय दंड संहिता की धारा 141 के तहत पांच या उससे अधिक लोगों का संगठन गैर-कानूनी हो सकता है यदि-(i) किसी कानूनी प्रक्रिया को अवरोध हो, (ii) कुछ लोगों की संपत्ति पर बलपूर्वक कब्जा हो, (iii) किसी आपराधिक कार्य की चर्चा हो, (iv) किसी व्यक्ति पर गैर-कानूनी काम के लिए दबाव और (v) सरकार या उसके कर्मचारियों को उनकी विधायी शक्तियों के प्रयोग हेतु धमकाना।

संगम या संघ बनाने का अधिकार

सभी नागरिकों को सभा, संघ अथवा सहकारी समितियां[10b] गठित करने का अधिकार होगा। इसमें शामिल हैं—राजनीतिक दल बनाने का अधिकार, कंपनी, साझा फर्म, समितियां, क्लब, संगठन, व्यापार संगठन या लोगों की अन्य इकाई बनाने का अधिकार। यह न केवल संगम या संघ बनाने का अधिकार प्रदान करता है, वरन उन्हें नियमित रूप से संचालित करने का अधिकार भी प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त यह संगम या संघ बनाने या उसमें शामिल होने के नकारात्मक अधिकार को भी शामिल करता है।

इस अधिकार पर भी राज्य द्वारा युक्तियुक्त प्रतिबंध लगाया जा सकता है। इसके आधार हैं-भारत की एकता एवं संप्रभुता, सार्वजनिक आदेश एवं नैतिकता। इन प्रतिबंधों का आधार है कि नागरिकों को कानूनी प्रक्रियाओं के तहत कानून सम्मत उद्देश्यों के लिए संगम या संघ बनाने का अधिकार है तथापि किसी संगम की स्वीकारोक्ति मूल अधिकार नहीं है।

उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि श्रम संगठनों को मोलभाव करने, हड़ताल करने एवं तालाबंदी करने का कोई अधिकार नहीं है। हड़ताल के अधिकार को उपयुक्त औद्योगिक कानून के तहत नियंत्रित किया जा सकता है।

अबाध संचरण की स्वतंत्रता

यह स्वतंत्रता प्रत्येक नागरिक को देश के किसी भी हिस्से में संचरण का अधिकार प्रदान करती है। वह स्वतंत्रतापूर्वक एक राज्य से दूसरे राज्य में या एक राज्य में एक से दूसरे स्थान पर संचरण कर सकता है। यह अधिकार इस बात को बल देता है कि भारत सभी नागरिकों के लिए एक है। इसका उद्देश्य राष्ट्रीय सोच को बढ़ावा देना है न कि संकीर्णता को।

इस स्वतंत्रता पर उचित प्रतिबंध लगाने के दो कारण हैं—आम लोगों का हित और किसी अनुसूचित जनजाति की सुरक्षा या हित। जनजातीय क्षेत्रों में बाहर के लोगों के प्रवेश को उनकी विशेष संस्कृति, भाषा, रिवाज और जनजातीय प्रावधानों के तहत प्रतिबंधित किया जा सकता है, ताकि उनका शोषण न हो सके।

उच्चतम न्यायालय ने इसमें व्यवस्था दी कि किसी वेश्या के संचरण के अधिकार को सार्वजनिक नैतिकता एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य के आधार पर प्रतिबंधित किया जा सकता है। बम्बई उच्च न्यायालय ने एड्स पीड़ित व्यक्ति के संचरण पर प्रतिबंध को वैध बताया।

संचरण की स्वतंत्रता के दो भाग हैं—आंतरिक (देश में निर्बाध संचरण) और बाह्य (देश के बाहर घूमने का अधिकार) तथा देश में वापस आने का अधिकार। अनुच्छेद 19 मात्र पहले भाग की रक्षा करता है। दूसरे, भाग को अनुच्छेद 21 (प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार) व्याख्यायित करता है।

निवास का अधिकार

हर नागरिक को देश के किसी भी हिस्से में बसने का अधिकार है। इस अधिकार के दो भाग हैं—(अ) देश के किसी भी हिस्से में रहने का अधिकार—इसका तात्पर्य है कि कहीं भी अस्थायी रूप से रहना एवं (ब) देश के किसी भी हिस्से में व्यवस्थित होने का अधिकार—इसका तात्पर्य है वहां घर बनाना एवं स्थायी रूप से बसना।

यह अधिकार देश के अंदर कहीं जाने के आंतरिक अवरोधों का समाप्त करता है। यह राष्ट्रवाद को प्रोत्साहित करता है और संकीर्ण मानसिकता को महत्व प्रदान नहीं करता।

राज्य इस अधिकार पर उचित प्रतिबंध दो आधारों पर लगा सकता है—विशेष रूप से आम लोगों के हित में और अनुसूचित जनजातियों के हित में। जनजातीय क्षेत्रों में उनकी संस्कृति भाषा एवं रिवाज के आधार पर बाहर के लोगों का, प्रवेश प्रतिबंधित किया जा सकता है। देश के कई भागों में जनजातियों को अपनी संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु अपने रिवाज एवं नियम-कानून के बनाने का अधिकार है।

उच्चतम न्यायालय ने कुछ क्षेत्रों में लोगों के घूमने पर प्रतिबंध लगाया है—जैसे वेश्या या पेशेवर अपराधी।

उपरोक्त प्रावधान में से यह स्पष्ट है कि निवास का अधिकार एवं घूमने के अधिकारों का कुछ विस्तार भी किया जा सकता है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

व्यवसाय आदि की स्वतंत्रता

सभी नागरिकों को किसी भी व्यवसाय को करने, पेशा अपनाने एवं व्यापार शुरू करने का अधिकार दिया गया है। यह अधिकार बहुत विस्तृत है क्योंकि यह जीवन निर्वहन हेतु आय से संबंधित है।

राज्य सार्वजनिक हित में इसके प्रयोग पर युक्तियुक्त प्रतिबंध लगा सकता है। इसके अतिरिक्त राज्य को यह अधिकार है कि वह:

(अ) किसी पेशे या व्यवसाय के लिए पेशेगत या तकनीकी योग्यता को जरूरी ठहरा सकता है।

(ब) किसी व्यापार, व्यवसाय, उद्योग या सेवा को पूर्ण या आंशिक रूप से स्वयं जारी रख सकता है।

इस प्रकार, जब राज्य किसी व्यापार, व्यवसाय उद्योग पर अपना एकाधिकार जताता है तो प्रतियोगिता में आने वाले व्यक्तियों या राज्यों के लिए अपने एकाधिकार को न्यायोचित ठहराने की कोई आवश्यकता नहीं।

इस अधिकार में कोई अनैतिक कृत्य शामिल नहीं हैं, जैसे-महिलाओं या बच्चों का दुरुपयोग या खतरनाक (हानिकारक औषधियों या विस्फोटक आदि) व्यवसाय। राज्य इन पर पूर्णत: प्रतिबंध लगा सकता है या इनके संचालन के लिए लाइसेंस की अनिवार्यता कर सकता है।

2. अपराध के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण

अनुच्छेद-20 किसी भी अभियुक्त या दोषी करार व्यक्ति, चाहे वह नागरिक हो या विदेशी या कंपनी व परिषद का कानूनी व्यक्ति हो, उसके विरुद्ध मनमाने और अतिरिक्त दण्ड से संरक्षण प्रदान करता है है। इस संबंध में तीन व्यवस्थाएं हैं:

(अ) कोई *पूर्व पद प्रभाव कानून* नहीं : कोई व्यक्ति (i) किसी व्यक्ति अपराध के लिए तब तक सिद्ध दोष नहीं ठहराया जाएगा, जब तक कि उसने ऐसा कोई कार्य करने के समय, जो अपराध के रूप में आरोपित है, किसी प्रवृत्त विधि का

अतिक्रमण नहीं किया है, या (ii) उससे अधिक शक्ति का भागी नहीं होगा, जो उस अपराध के लिए जाने के समय प्रवृत्त विधि के अधीन अधिरोपित की जा सकती थी।

(ब) ***दोहरी क्षति नहीं:*** किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक अभियोजित और दंडित नहीं किया जाएगा।

(स) ***स्व-अभिशंसन नहीं:*** किसी अपराध के लिए अभियुक्त किसी व्यक्ति को स्वयं अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।

एक पूर्व पद प्रभाव-कानून वह है, जो पूर्व व्यापी प्रभाव से दण्ड अध्यारोपित करता है अर्थात् किए गए कृत्यों पर या जो ऐसे कृत्यों हेतु दण्ड को बढ़ाता है। अनुच्छेद 20 के पहले प्रावधान के अंतर्गत इस तरह के क्रियान्वयन पर रोक है। हालांकि इस तरह की सीमाएं केवल आपराधिक कानूनों में ही हैं, न कि सामान्य सिविल अधिकार या कर कानूनों में। दूसरे शब्दों में, जन-उत्तरदायित्व या एक कर को पूर्व व्यापी रूप में लगाया जा सकता है, इसके अतिरिक्त इस तरह की व्यवस्था अपराध दोष या सजा सुनाए जाने के मौके पर आपराधिक कानूनों पर प्रभावी रहती है। अंततः सुरक्षा व्यवस्था के तहत बचाव के मामले में एक व्यक्ति की सुरक्षा की मांग के आधार पर नहीं की जा सकती।

दोहरी क्षति के विरुद्ध सुरक्षा का मामला सिर्फ एक कानूनी न्यायालय या न्यायिक अधिकरण में ही उठाया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, यह विभागीय या प्रशासनिक सुनवाई में लागू नहीं हो सकता। चूंकि ये न्यायिक प्रकृति के नहीं हैं।

स्व-अभिशंसन के संबंध में मौखिक और प्रलेखीय साक्ष्य दोनों में संरक्षण प्राप्त है। हालांकि यह विस्तारित नहीं किया जा सकता—(i) भौतिक विषयों के आवश्यक उत्पादनों पर (ii) अंगूठे के निशान, हस्ताक्षर एवं रक्त जांच की अनिवार्यता पर (iii) किसी इकाई की प्रदर्शनी की अनिवार्यता। इसके अलावा इसका विस्तार केवल आपराधिक सुनवाइयों पर ही हो सकता है, जो आपराधिक प्रकृति की न हों।

3. प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता

अनुच्छेद 21 में घोषणा की गई है कि किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा अन्यथा नहीं।

प्रसिद्ध *गोपालन मामले* (1950)[11] में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 21 की सूक्ष्म व्याख्या की। इसमें व्यवस्था की गई कि अनुच्छेद 21 के तहत सिर्फ मनमानी कार्यकारी प्रक्रिया के विरुद्ध सुरक्षा उपलब्ध है न कि विधानमंडलीय प्रक्रिया के विरुद्ध। इसका मतलब राज्य प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार को कानूनी आधार पर रोक सकता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि अनुच्छेद 21 की अभिव्यक्ति "विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया" अमेरिका के संविधान में अभिव्यक्ति "विधि की विधिवत प्रक्रिया" से भिन्न है। इस तरह कानून की वैधता एवं उसकी व्यवस्था पर अकारण, अन्यायपूर्ण आधार पर प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता का मतलब सिर्फ एक व्यक्ति की शारीरिक एवं निजी स्वतंत्रता से है। लेकिन *मेनका मामले* (1978)[12] में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 21 के तहत गोपालन मामले में अपने फैसले को पलट दिया। अतः न्यायालय ने व्यवस्था दी कि प्राण और दैहिक स्वतंत्रता को उचित एवं न्यायपूर्ण मामले के आधार पर रोका जा सकता है। इसके प्रभाव में अनुच्छेद 21 के तहत सुरक्षा केवल मनमानी कार्यकारी क्रिया पर ही उपलब्ध नहीं बल्कि विधानमंडलीय क्रिया के विरुद्ध भी उपलब्ध है। न्यायालय ने 'प्राण की स्वतंत्रता' की व्याख्या करते हुए कहा इसके विस्तार का आशय है कि एक व्यक्ति की प्राण स्वतंत्रता में अधिकारों के कई प्रकार हैं—इसमें 'प्राण के अधिकार' को शारीरिक बंधनों में नहीं बांधा गया बल्कि इसमें मानवीय सम्मान और इससे जुड़े अन्य पहलुओं को भी रखा गया।

उच्चतम न्यायालय ने मेनका मामले में अपने फैसले को दोबारा स्थापित किया। इसमें अनुच्छेद 21 के भाग के रूप में निम्नलिखित अधिकारों की घोषणा की:

1. मानवीय प्रतिष्ठा के साथ जीने का अधिकार।
2. स्वच्छ पर्यावरण—प्रदूषण रहित जल एवं वायु में जीने का अधिकार एवं हानिकारक उद्योगों के विरुद्ध सुरक्षा।
3. जीवन रक्षा का अधिकार।
4. निजता का अधिकार।
5. आश्रय का अधिकार।
6. स्वास्थ्य का अधिकार।
7. 14 वर्ष की उम्र तक निःशुल्क शिक्षा का अधिकार।
8. निःशुल्क कानूनी सहायता का अधिकार।
9. अकेले कारावास में बंद होने के विरुद्ध अधिकार।
10. त्वरित सुनवाई का अधिकार।
11. हथकड़ी लगाने के विरुद्ध अधिकार।
12. अमानवीय व्यवहार के विरुद्ध अधिकार।

13. देर से फांसी के विरुद्ध अधिकार।
14. विदेश यात्रा करने का अधिकार।
15. बंधुआ मजदूरी करने के विरुद्ध अधिकार।
16. हिरासत में शोषण के विरुद्ध अधिकार।
17. आपातकालीन चिकित्सा सुविधा का अधिकार।
18. सरकारी अस्पतालों में समय पर उचित इलाज का अधिकार।
19. राज्य के बाहर न जाने का अधिकार।
20. निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार।
21. कैदी के लिए जीवन की आवश्यकताओं का अधिकार।
22. महिलाओं के साथ आदर और सम्मानपूर्वक व्यवहार करने का अधिकार।
23. सार्वजनिक फांसी के विरुद्ध अधिकार।
24. सुनवाई का अधिकार।
25. सूचना का अधिकार।
26. प्रतिष्ठा का अधिकार।
27. दोषसिद्धि वाले न्यायालय आदेश से अपील का अधिकार
28. सामाजिक सुरक्षा तथा परिवार के संरक्षण का अधिकार
29. सामाजिक एवं आर्थिक न्याय एवं सशक्तीकरण का अधिकार
30. बार केटर्स के विरुद्ध अधिकार
31. जीवन बीमा पॉलिसी के विनियोग का अधिकार
32. शयन का अधिकार
33. शोर प्रदूषण से मुक्ति का अधिकार
34. विद्युत (बिजली) का अधिकार

4. शिक्षा का अधिकार

अनुच्छेद 21क में घोषणा की गई है कि राज्य 6 से 14 वर्ष तक की उम्र के बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराएगा। इसका निर्धारण राज्य करेगा। इस प्रकार यह व्यवस्था केवल आवश्यक शिक्षा के एक मूल अधिकार के अंतर्गत है न कि उच्च या व्यावसायिक शिक्षा के संदर्भ में।

यह व्यवस्था 86वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम, 2002 के अंतर्गत की गयी है। यह संशोधन देश में 'सर्वशिक्षा' के लक्ष्य में एक मील का पत्थर साबित हुआ है। सरकार ने यह कदम नागरिकों के अधिकार के मामले में द्वितीय क्रांति की तरह उठाया है।

इस संशोधन के पहले भी संविधान में भाग 4 के अनुच्छेद 45 में बच्चों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था थी तथापि निदेशक सिद्धांत होने के कारण यह न्यायालय द्वारा जरूरी नहीं ठहराया जा सकता था। अब उसमें कानूनी प्रावधान की व्यवस्था है।

यह संशोधन अनुच्छेद 45 के निदेशक सिद्धांत को बदलता है। अब इसे पढ़ा जाता है—'राज्य सभी बच्चों को चौदह वर्ष की आयु पूरी करने तक निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए उपबंध करने का प्रयास करेगा।' इसमें एक मूल कर्तव्य अनुच्छेद 51क के तहत जोड़ा गया—'प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह 6 से 14 वर्ष तक के अपने बच्चे को शिक्षा प्रदान कराएगा।'

1993 में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 21 के अंतर्गत स्वयं जीवन के अधिकार में प्राथमिक शिक्षा को मूल अधिकार में जोड़ा। इसमें व्यवस्था की गई कि भारत के किसी भी बच्चे को 14 वर्ष की आयु तक नि:शुल्क शिक्षा प्रदान की जाए। इसके उपरांत उसकी शिक्षा का अधिकार आर्थिक क्षमता की सीमा एवं राज्य के विकास का विषय है। इस फैसले में न्यायालय ने अपने पूर्व फैसले (1992) को बदला, जिसमें घोषणा की गई थी कि शिक्षा का अधिकार किसी भी स्तर पर है, जिसमें व्यावसायिक शिक्षा जैसे-चिकित्सा एवं इंजीनियरिंग भी शामिल हैं।

अनुच्छेद 21A के अनुसरण में, संसद ने बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार (RTE) अधिनियम, 2009 अधिनियमित करके इस अधिनियम के अंतर्गत यह व्यवस्था है कि 14 वर्ष की आयु तक के प्रत्येक बच्चे को संतोषजनक एवं समुचित गुणवत्ता वाली पूर्णकालिक प्रारम्भिक शिक्षा एक ऐसे औपचारिक विद्यालय, जिसमें कि अनिवार्य परिपाटियों एवं मानकों का पालन किया जाता हो, में प्राप्त करने का अधिकार है। यह विधान इस दृष्टि से अधिनियमित किया गया है कि समानता, सामाजिक न्याय तथा लोकतंत्र के मूल्यों के साथ ही न्यायपूर्ण एवं मानवीय समाज निर्माण

का लक्ष्य सभी को समावेशी प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान कर प्राप्त किया जा सके।[12a]

5. निरोध एवं गिरफ्तारी से संरक्षण

अनुच्छेद 22 किसी व्यक्ति को गिरफ्तारी एवं निरोध से संरक्षण प्रदान करता है। हिरासत दो तरह की होती हैं–दंड विषयक (कठोर) और निवारक। दंड विषयक हिरासत, एक व्यक्ति को दंड देती है, जिसने अपराध स्वीकार कर लिया है और अदालत में उसे दोषी ठहराया जा चुका है। निवारक हिरासत वह है, जिसमें बिना सुनवाई के अदालत में दोषी ठहराया जाए। इसका उद्देश्य किसी व्यक्ति को पिछले अपराध पर दंडित न कर भविष्य में ऐसे अपराध न करने की चेतावनी देने जैसा है। इस तरह निवारक हिरासत केवल शक के आधार पर एहतियाती होती है।

अनुच्छेद 22 के दो भाग हैं—पहला भाग साधारण कानूनी मामले से संबंधित है, जबकि दूसरा भाग निवारक हिरासत के मामलों से संबंधित है।

(अ) अनुच्छेद 22 का पहला भाग उस व्यक्ति को जिसे साधारण कानून के तहत हिरासत में लिया गया निम्नलिखित अधिकार उपलब्ध कराता है:

(i) गिरफ्तार करने के आधार पर सूचना देने का अधिकार।

(ii) विधि व्यवसायी से परामर्श और प्रतिरक्षा कराने का अधिकार।

(iii) दंडाधिकारी (मजिस्ट्रेट) के सम्मुख 24 घंटे में, यात्रा के समय को मिलाकर पेश होने का अधिकार।

(iv) दंडाधिकारी द्वारा बिना अतिरिक्त निरोध दिए 24 घंटे में रिहा करने का अधिकार।

यह सुरक्षा कवच विदेशी व्यक्ति या निवारक हिरासत कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार व्यक्ति के लिए उपलब्ध नहीं हैं।

उच्चतम न्यायालय ने यह व्यवस्था भी दी कि अनुच्छेद 22 का प्रथम भाग 'गिरफ्तारी और निरोध' न्यायालय के आदेश के अंतर्गत गिरफ्तारी, जन-अधिकार गिरफ्तारी, आयकर न देने पर गिरफ्तारी एवं विदेशी के पकड़े जाने पर लागू नहीं होता। इसका प्रयोग केवल आपराधिक क्रियाओं या सरकारी अपराध प्रकृति एवं कुछ प्रतिकूल सार्वजनिक हितों पर हो सकता है।

(ब) अनुच्छेद 22 का दूसरा भाग उन व्यक्तियों को सुरक्षा प्रदान करता है, जिन्हें दंड विषयक कानून के अंतर्गत गिरफ्तार किया गया है। यह सुरक्षा नागरिक एवं विदेशी दोनों के उपलब्ध है। इसमें शामिल हैं—

(i) व्यक्ति की हिरासत तीन माह से ज्यादा नहीं बढ़ाई जा सकती, जब तक कि सलाहकार बोर्ड इस बारे में उचित कारण न बताए। बोर्ड में उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश होंगे।

(ii) निरोध का आधार संबंधित व्यक्ति को बताया जाना चाहिए। हालांकि सार्वजनिक हितों के विरुद्ध इसे बताना आवश्यक नहीं है।

(iii) निरोध वाले व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह निरोध के आदेश के विरुद्ध अपना प्रतिवेदन करे।

अनुच्छेद 22, संसद को भी यह बताने के लिए अधिकृत करता है कि **(अ)** किन परिस्थितियों के अधीन और किस वर्ग या वर्गों के मामलों में किसी व्यक्ति को निवारक निरोध का उपबंध करने वाली किसी विधि के अधीन तीन मास से अधिक अवधि के लिए सलाहकार बोर्ड की राय प्राप्त किए बिना विरुद्ध नहीं किया जाएगा। **(ख)** किसी वर्ग या वर्गों के मामलों में किती अधिकतम अवधि के लिए किसी व्यक्ति को निवारक निरोध का उपबंध करने वाली किसी विधि के अधीन विरुद्ध किया जा सकेगा। **(ग)** जांच में सलाहकार बोर्ड द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया।

44वें संविधान अधिनियम, 1978 द्वारा निरोध की अवधि को बिना सलाहकार बोर्ड के राय के तीन से दो माह कर दिया गया है। हालांकि यह व्यवस्था अब भी प्रयोग में नहीं आई, जबकि निरोध की मूल अवधि तीन माह की अब भी जारी है।

संविधान ने हिरासत मामले में वैधानिक शक्तियों को संसद एवं विधानमंडल के बीच विभक्त किया है। संसद के पास निवारक निरोध, रक्षा, विदेश मामलों एवं भारत की सुरक्षा के संबंध में विशेष अधिकार हैं। संसद एवं विधानमंडल दोनों को आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति सुनिश्चित करने, सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने एवं राज्य की सुरक्षा मामले आदि पर हिरासत संबंधी कानून बनाने का अधिकार है।

निवारक निरोध कानून, जिन्हें संसद द्वारा बनाया गया है:

(i) निवारक निरोध अधिनियम 1950, जो 1969 में समाप्त हो गया।

(ii) आंतरिक सुरक्षा अधिनियम (MISA) 1971, जिसे 1978 में निरसित कर दिया।

(iii) विदेशी मुद्रा का संरक्षण एवं व्यसन निवारण अधिनियम (COFEPOSA) 1974।

(iv) राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम (NASA), 1980।

(v) चोरबाजारी रिवारण और आवश्यक वस्तु प्रदाय अधिनियम (PBMSECA), 1980।

(vi) आतंकवादी और विध्वंसक क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम (TADA) 1985, यह 1995 में समाप्त हो गया।

(vii) स्वापक औषधि और मन: प्रभावी पदार्थ व्यापार निवारण (PITNDPSA) अधिनियम, 1988।

(viii) आतंकवाद निवारण अधिनियम (POTA) 2002। 2004 में इसे निरस्त कर दिया गया।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि विश्व में कोई भी ऐसा लोकतांत्रिक देश नहीं है, जहां भारत के समान संविधान के अंतरिम भाग में आंतरिक निरोध एवं निवारण संबंधी कानून की पूरी व्यवस्थाएं हों। अमेरिका में तो हैं ही नहीं। ब्रिटेन में इन्हें तब दोबारा रखा गया, जब प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध का समय था। भारत में भी ब्रिटिश शासनकाल के समय यह व्यवस्था थी। उदाहरण के लिए बंगाल राज्य कैदी विधेयक, 1818 एवं भारत की सुरक्षा अधिनियम, 1939 में निवारक निरोध की व्यवस्था थी।

शोषण के विरुद्ध अधिकार

1. मानव दुर्व्यापार एवं बलात् श्रम का निषेध

अनुच्छेद 23 मानव दुर्व्यापार, बेगार (बलात् श्रम) और इसी प्रकार के अन्य बलात् श्रम के प्रकारों पर भी प्रतिबंध लगाता है। इस व्यवस्था के अंतर्गत कोई भी उल्लंघन कानून के अनुसार दंडनीय होगा। यह अधिकार नागरिक एवं गैर-नागरिक दोनों के लिए उपलब्ध होगा। यह किसी व्यक्ति को न केवल राज्य के खिलाफ बल्कि व्यक्तियों के खिलाफ भी सुरक्षा प्रदान करता है।

'मानव दुर्व्यापार' शब्द में शामिल हैं- (i) पुरुष, महिला एवं बच्चों की वस्तु के समान खरीद-बिक्री, (ii) महिलाओं और बच्चों का अनैतिक दुर्व्यापार, इसमें वेश्यावृत्ति भी शामिल है, (iii) देवदासी और (iv) दास। इस तरह के कृत्यों पर दंडित करने के लिए संसद ने अनैतिक दुर्व्यापार (निवारण) अधिनियम [13], 1956 बनाया है।

बेगार का अभिप्राय है-बिना परिश्रमिक के काम कराना। यह एक विशिष्ट भारतीय व्यवस्था थी, जिसके तहत क्षेत्रीय जमींदार कभी-कभी अपने नौकरों या उधार लेने वालों से बिना कोई भुगतान किए कार्य कराते थे। अनुच्छेद 23 बेगार के अलावा बलात् श्रम के अन्य प्रकारों, यथा बंधुआ मजदूरी पर भी रोक लगाता है। बलात् श्रम का अर्थ है कि किसी व्यक्ति की इच्छा के विरुद्ध उससे कार्य लेना। बलात् श्रम में केवल शारीरिक अथवा कानूनी बलात् स्थिति ही शामिल नहीं है, बल्कि इसमें आर्थिक परिस्थितियों से उत्पन्न बाध्यता, यथा-न्यूनतम मजदूरी से कम पर काम कराना आदि भी शामिल है। इस संबंध में बंधुआ मजदूरी व्यवस्था (निरसन) अधिनियम, 1976, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948 ठेका श्रमिक अधिनियम 1970, और समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 बनाए गए।

अनुच्छेद 23 में इस उपबंध के अपवाद का भी प्रावधान है। यह राज्य को अनुमति प्रदान करता है कि सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए अनिवार्य सेवा, उदाहरण के लिए सैन्य सेवा एवं सामाजिक सेवा आरोपित कर सकता है, जिनके लिए वह धन देने को बाध्य नहीं है। लेकिन इस तरह की सेवा में लगाने में राज्य को धर्म, जाति या वर्ग के आधार पर भेदभाव की अनुमति नहीं है।

2. कारखानों आदि में बालकों के नियोजन का निषेध

अनुच्छेद-24 किसी फैक्ट्री, खान अथवा अन्य परिसंकटमय गतिविधियों यथा निर्माण कार्य अथवा रेलवे में 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के नियोजन का प्रतिषेध करता है, लेकिन यह प्रतिषेध किसी नुकसान न पहुंचाने वाले अथवा निर्दोष कार्यों में नियोजन का प्रतिषेध नहीं करता है।

बाल श्रम (प्रतिषेध एवं नियमन) अधिनियम, 1986 इस दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कानून है। इसके अलावा बालक नियोजन अधिनियम, 1938; कारखाना अधिनियम 1948; खान अधिनियम, 1952; वाणिज्य पोत परिवहन अधिनियम, 1958; बागान श्रम अधिनियम, 1951; मोटर परिवहन कर्मकार अधिनियम 1951; प्रशिक्षु अधिनियम 1961; बीड़ी तथा सिगार कर्मकार अधिनियम 1966 और इसी प्रकार के अन्य अधिनियम निश्चित आयु से कम के बालकों के नियोजन का प्रतिषेध करते हैं।

1996 में उच्चतम न्यायालय ने बाल श्रम पुनर्वास कल्याण कोष की स्थापना का निर्देश दिया, जिसमें बालकों को नियोजित करने वाले द्वारा प्रति बालक 20,000 रुपए जमा कराने का प्रावधान है। इसने बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य एवं पोषण में भी सुधार के लिए निर्देश दिए।

बालक अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005 बालकों के अधिकारों के संरक्षण के लिए एक राष्ट्रीय आयोग और राज्य आयोगों की स्थापना और बालकों के विरुद्ध अपराधों अथवा बालक अधिकारों के उल्लंघन पर शीघ्र विचारण के लिए अधिनियमित किया गया।

2006 में सरकार ने बच्चों के घरेलू नौकरों के रूप में काम करने पर अथवा व्यावसायिक प्रतिष्ठानों, जैसे–होटलों, रेस्तरां, दुकानों, कारखानों, रिसॉर्ट, स्पा, चाय की दुकानों आदि में नियोजन पर रोक लगा दी है। इसमें 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को नियोजित करने वालों के विरुद्ध अभियोजन और दंडात्मक कार्रवाई की चेतावनी दी गई है।

बाल श्रम संशोधन (2016)

बाल श्रम (निषेध एवं विनियमन) संशोधन अधिनियम, 2016 द्वारा बाल श्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम, 1986 को संशोधित कर दिया। इसने मूल अधिनियम का नाम बदलकर बाल एवं किशोर श्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम, 1986 कर दिया है।

संशोधन अधिनियम 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को सभी व्यवसायों एवं प्रक्रियाओं में रोजगार निषिद्ध करता है। पहले यह निषेध 18 व्यवसायों एवं 65 प्रक्रियाओं पर लागू था।

पुनः संशोधन अधिनियम किशोरों (14 से 18 वर्ष की आयु) को कतिपय खतरनाक व्यवसायों एवं प्रक्रियाओं में रोजगार निषिध करता है।

संशोधन अधिनियम ने उल्लंघन करने वालों के लिए कड़े दंड का भी प्रावधान किया है–6 माह से 2 वर्ष तक की कैद अथवा रु. 20000/– से रु. 50000/– तक का जुर्माना/अपराध दोहराए जाने पर कैद की अवधि 1 से 3 वर्ष की होगी।

धर्म की स्वतंत्रता के अधिकार

1. अंत:करण की और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता

अनुच्छेद 25 के अनुसार सभी व्यक्तियों को अंत:करण की स्वतंत्रता का और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान हक होगा। इसके प्रभाव हैं:

- **(i) अंत:करण की स्वतंत्रता:** किसी भी व्यक्ति को भगवान या उसके रूपों के साथ अपने ढंग से अपने संबंध को बनाने की आंतरिक स्वतंत्रता।
- **(ii) मानने का अधिकार:** अपने धार्मिक विश्वास और आस्था की सार्वजनिक और बिना भय के घोषणा करने का अधिकार।
- **(iii) आचरण का अधिकार:** धार्मिक पूजा, परंपरा, समारोह करने और अपनी आस्था और विचारों के प्रदर्शन की स्वतंत्रता।
- **(iv) प्रसार का अधिकार:** अपनी धार्मिक आस्थाओं का अन्य को प्रचार और प्रसार करना या अपने धर्म के सिद्धांतों को प्रकट करना। परन्तु इसमें किसी व्यक्ति को अपने धर्म में धर्मांतरित करने का अधिकार सम्मिलित नहीं है। जबरदस्ती किया गया धर्मांतरण सभी समान व्यक्तियों के लिए सुनिश्चित अंत:करण की स्वतंत्रता का अतिक्रमण करता है।

उपरोक्त प्रावधानों से यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 25 केवल धार्मिक विश्वास को ही नहीं, बल्कि धार्मिक आचरणों को भी समाहित करता है। यह अधिकार सभी व्यक्तियों नागरिकों एवं गैर–नागरिकों सबके लिए उपलब्ध हैं।

यद्यपि ये अधिकार सार्वजनिक व्यवस्थाओं , नैतिकता, स्वास्थ्य एवं मूल अधिकारों से संबंधित अन्य प्रावधनों के अनुसार हैं। राज्य को इस बात की अनुमति देता है:

(अ) धार्मिक आचरण से संबंद्ध किसी आर्थिक, वित्तीय, राजनीतिक या अन्य लौकिक क्रियाकलाप का विनियमन या निर्बंधन करे।

(ब) सामाजिक कल्याण और सुधार के लिए या सार्वजनिक प्रकार की हिन्दुओं की धार्मिक संस्थाओं को हिन्दुओं के सभी वर्गों और अनुभागों के लिए खोलना।

अनुच्छेद 25 में दो व्याख्याएं भी की गई हैं— *पहला,* कृपाण धारण करना और लेकर चलना सिख धर्म के मानने का अंग समझा जाएगा, और; *दूसरा* इस संदर्भ में हिन्दुओं में सिख, जैन और बौद्ध सम्मिलित हैं।[14]

2. धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता

अनुच्छेद 26 के अनुसार, प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय या उसके किसी अनुभाग को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होंगे:

(i) धार्मिक एवं मूर्त प्रयोजनों के लिए संस्थाओं की स्थापना और पोषण का अधिकार;

(ii) अपने धर्म विषयक कार्यों का प्रबंध करने का अधिकार;

(ii) जंगम और स्थावर संपत्ति के अर्जन और स्वामित्व का अधिकार, और;

(iv) ऐसी संपत्ति का विधि के अनुसार प्रशासन करने का अधिकार।

अनुच्छेद 25 जहां व्यक्तिगत अधिकारों की गारंटी देता है, वहीं अनुच्छेद 26 धार्मिक संप्रदाय या इसके अनुभागों को अधिकार

प्रदान करता है। दूसरे शब्दों में, अनुच्छेद 26 सामूहिक धार्मिक रूप से अधिकारों की रक्षा करता है। अनुच्छेद 25 की तरह ही, अनुच्छेद 26 भी सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता एवं स्वास्थ्य संबंधी अधिकार देता है लेकिन मूल अधिकारों से संबंधित अन्य प्रावधानों में नहीं।

उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी है कि धार्मिक संप्रदायों को तीन शर्तें पूरी करनी चाहिए:

(i) यह व्यक्तियों का समूह होना चाहिए, जिनका विश्वास तंत्र उनके अनुसार उनकी आत्मिक तुष्टि के लिए अनुकूल हो।

(ii) इनका एक सामान्य संगठन होना चाहिए एवं

(iii) इसका एक विशिष्ट नाम होना चाहिए।

उपरोक्त मामले के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि 'रामकृष्ण मिशन' और 'आनन्द मार्ग' हिंदू धर्म के अंतर्गत धार्मिक संप्रदाय हैं। उच्चतम न्यायालय ने यह भी कहा था कि अरविंदो सोसाइटी धार्मिक संप्रदाय नहीं है।

3. धर्म की अभिवृद्धि के लिए करों के संदाय से स्वतंत्रता

अनुच्छेद 27 में उल्लिखित है कि किसी भी व्यक्ति को किसी विशिष्ट धर्म या धर्मिक संप्रदाय की अभिवृद्धि या पोषण में व्यय करने के लिए करों के संदाय हेतु बाध्य नहीं किया जाएगा। दूसरे शब्दों में, राज्य कर के रूप में एकत्रित धन को किसी विशिष्ट धार्मिक उत्थान एवं रख-रखाव के लिए व्यय नहीं कर सकता है। यह व्यवस्था राज्य को किसी धर्म का दूसरे के मुकाबले पक्ष लेने से रोकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि करों का प्रयोग सभी धर्मों के रख-रखाव एवं उन्नति के लिए किया जा सकता है। यह व्यवस्था केवल कर की उगाही पर रोक लगाती है, न कि शुल्क पर।

ऐसा इसलिए क्योंकि शुल्क लगाने का उद्देश्य धार्मिक संस्थानों पर धर्म निरपेक्ष प्रशासन के पक्ष में नियंत्रण लगाना है। इस तरह तीर्थ यात्रियों से शुल्क की उगाही की जा सकती है। ताकि उन्हें कुछ विशेष सुविधाएं एवं सुरक्षा मुहैया कराई जा सके। इसी तरह धार्मिक कार्यकलापों और उनके खर्च के नियमितीकरण पर भी शुल्क लगाया जा सकता है।

4. धार्मिक शिक्षा में उपस्थित होने से स्वतंत्रता

अनुच्छेद 28 के अंतर्गत राज्य-निधि से पूर्णत: पोषित किसी शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा न दी जाए। हालांकि यह व्यवस्था उन संस्थानों में लागू नहीं होती, जिनका प्रशासन तो राज्य कर रहा हो लेकिन उसकी स्थापना किसी विन्यास या न्यास के अधीन हुई हो।

राज्य से मान्यता प्राप्त या राज्य-निधि से सहायता पाने के लिए शिक्षा संस्था में उपस्थित होने वाले किसी व्यक्ति को ऐसी संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा या उपासना में भाग लेने के लिए उसकी अपनी सहमति के बिना बाध्य नहीं किया जाएगा। अवयस्क के मामले में उसके संरक्षक की सहमति की आवश्यकता होगी।

इस तरह अनुच्छेद 28 चार प्रकार की शैक्षणिक संस्थानों में विभेद करता है:

(i) ऐसे संस्थान , जिनका पूरी तरह रख-रखाव राज्य करता है।

(ii) ऐसे संस्थान, जिनका प्रशासन राज्य करता है लेकिन उनकी स्थापना किसी विन्यास या न्यास के तहत हो।

(iii) राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थान।

(iv) ऐसे संस्थान, जो राज्य द्वारा वित्त सहायता प्राप्त कर रहे हों।

प्रावधान (i) में धार्मिक निर्देश पूरी तरह प्रतिबंधित हैं, जबकि (ii) में धार्मिक शिक्षा ाकी अनुमति है। (iii) और (iv) में स्वैच्छिक आधार पर धार्मिक शिक्षा की अनुमति है।

संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार

1. अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण

अनुच्छेद 29 यह उपबंध करता है कि भारत के किसी भी भाग में रहने वाले नागरिकों के किसी भी अनुभाग को जिसकी अपनी बोली, भाषा, लिपि, संस्कृति को सुरक्षित रखने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त, किसी भी नागरिक को राज्य के अंतर्गत आने वाले संस्थान या उससे सहायता प्राप्त संस्थान में धर्म, जाति या भाषा के आधार पर प्रवेश से रोका नहीं जा सकता।

पहली व्यवस्था एक समूह के अधिकारों की रक्षा करती है, जबकि दूसरी व्यवस्था नागरिक के व्यक्तिगत सम्मान की रक्षा करती है फिर चाहे वह किसी भी समुदाय से संबद्ध हो।

अनुच्छेद 29, धार्मिक अल्पसंख्यकों एवं भाषायी अल्पसंख्यकों को सुरक्षा प्रदान करता है। हालांकि उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी है कि इस अनुच्छेद की व्यवस्था केवल अल्पसंख्यकों के मामले में ही नहीं, जैसा कि सामान्यत: माना जाता है, क्योंकि 'नागरिकों के अनुभाग' शब्द का अभिप्राय अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक दोनों से है।

उच्चतम न्यायालय ने यह व्यवस्था भी दी है कि भाषा की रक्षा में भाषा के संरक्षण हेतु आंदोलन करने का अधिकार भी सम्मिलित है। अत: नागरिकों के एक अनुभाग की भाषा के संरक्षण हेतु राजनीतिक भाषण या वादे जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 का उल्लंघन नहीं करते हैं।

2. शिक्षा संस्थानों की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक वर्गों का अधिकार

अनुच्छेद 30 अल्पसंख्यकों, चाहे धार्मिक या भाषायी, को निम्नलिखित अधिकार प्रदान करता है:

(i) सभी अल्पसंख्यकों वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा।

(ii) राज्य द्वारा अल्पसंख्यक वर्ग शिक्षा संस्था की किसी संपत्ति के अनिवार्य अर्जन के लिए निर्धारित क्षतिपूर्ति रकम से उनके लिए प्रत्याभूत अधिकार निर्बंधित या निराकृत नहीं होंगे। इस उपबंध 1978 के 44वें संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़ा गया। इस अधिनियम ने संपत्ति के अधिकार को मूल अधिकार (अनुच्छेद) से निरसित कर दिया।

(iii) राज्य आर्थिक सहायता में अल्पसंख्यकों द्वारा प्रबंधित संस्थानों में विभेद नहीं करेगा।

इस तरह अनुच्छेद 30 के अल्पसंख्यकों (धार्मिक एवं भाषायी) की सुरक्षा का विस्तार नागरिकों के किसी अन्य अनुभाग के लिए (जैसा कि अनुच्छेद 29) नहीं है। हालांकि 'अल्पसंख्यक' शब्द को संविधान में कहीं भी परिभाषित नहीं किया गया है।

अनुच्छेद 30 के अंतर्गत उल्लिखित अधिकार, अल्पसंख्यकों को अपने बच्चों को अपनी भाषा में शिक्षा का अधिकार भी प्रदान करता है।

अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थाएं तीन प्रकार की होती हैं:

(i) राज्य से आर्थिक सहायता एवं मान्यता लेने वाले संस्थान।

(ii) ऐसे संस्थान, जो राज्य से मान्यता लेते हैं, लेकिन उन्हें आर्थिक सहायता प्राप्त नहीं होती।

(iii) ऐसे संस्थान, जो राज्य से मान्यता या सहायता नहीं लेते।

पहले एवं दूसरे प्रकार के संस्थानों में राज्य के अनुसार शिक्षण, स्टाफ, पाठ्यक्रम, शैक्षणिक मानक, अनुशासन, सफाई व्यवस्था होगी। तीसरे प्रकार के संस्थान प्रशासनिक मामलों में स्वतंत्र परन्तु सामान्य कानून हैं, जैसे-ठेका कानून, श्रम कानून, औद्योगिक कानून, कर कानून, आर्थिक विनियम आदि आवश्यक हैं।

सेक्रेटरी ऑफ मलनकारा सीरियन कैथोलिक कॉलेज केस[14a] (2007) के फैसले में, सर्वोच्च न्यायालय ने अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थानों की स्थापना तथा प्रशासन से सम्बन्धित सामान्य सिद्धांतों को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है:

1. शैक्षिक संस्थानों को स्थापना एवं प्रशासन करने के अल्पसंख्यकों के अधिकार के अंतर्गत निम्नलिखित अधिकार शामिल हैं:

   (i) अपना शासी निकाय (Governing body) चुनने का अधिकार जिसमें संस्थापकों का भरोसा हो कि वह संस्थान को भली-भांति चला सकेगा।

   (ii) शिक्षण कर्मचारियों (शिक्षक/व्याख्याता तथा प्रधानाध्यापक/प्राचार्य) तथा शिक्षकेतर कर्मचारियों को नियुक्त करने, साथ ही कर्तव्य में लापरवाही बरतने पर उनके विरुद्ध कार्रवाई करने का अधिकार।

   (iii) अपनी पसंद के अर्ह विद्यार्थियों को प्रवेश दिलाने तथा एक सुसंगत शुल्क-ढांचा स्थापित करने का अधिकार।

   (iv) अपनी सम्पदा तथा परिसम्पत्तियों का संस्थान के हित में उपयोग करने का अधिकार।

2. अनुच्छेद 30 के अंतर्गत अल्पसंख्यकों को मिले अधिकार केवल बहुसंख्यकों के साथ समानता स्थापित करने के लिए है, न कि इसलिए कि अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों के मुकाबले अधिक लाभ की स्थिति में रख दिया जाए। अल्पसंख्यकों के पक्ष में किसी भी प्रकार का विपरीत भेदभाव (Reverse discrimination) नहीं है। देश का सामान्य कानून जो राष्ट्रीय हित, राष्ट्रीय सुरक्षा, समाज कल्याण, सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता, स्वास्थ्य, स्वच्छता, कराधान इत्यादि से सम्बन्धित है जो सब पर लागू होता है, अल्पसंख्यक संस्थानों पर भी लागू होगा।

3. अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना एवं प्रशासन का अधिकार सम्पूर्ण या अबाध नहीं है। न ही इसके अंतर्गत कुप्रबंधन शामिल है। शैक्षिक चरित्र तथा मानक एवं अकादेमिक उत्कृष्टता सुनिश्चित करने के लिए विनियामक उपाय किए जा सकते हैं। प्रशासन पर भी नियंत्रित किया जा सकता है अगर उसे कार्यकुशल एवं मजबूत बनाने की आवश्यकता हो ताकि संस्थान की अकादेमिक

आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। राज्य द्वारा विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के कल्याण से सम्बन्धित नियम नियुक्ति के लिए अर्हता एवं योग्यता के निर्धारण के लिए नियम साथ ही कर्मचारियों की सेवा शर्तों (शैक्षिक एवं शिक्षाकेतर दोनों) के लिए नियम, कर्मचारियों का शोषण उत्पीड़न रोकने के लिए नियम, तथा पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्या निर्धारित करने के लिए नियम इस कोटि में आते हैं। ऐसे नियम-उपनियम किसी भी प्रकार अनुच्छेद-30 (1) के अंतर्गत प्राप्त अधिकारों में रखने नहीं देते।

4. राज्य द्वारा निर्धारित अर्हता शर्तो/योग्यताओं का पालन किए जाने की शर्त पर, अनुदान रहित अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थानों को शिक्षक/व्याख्याता की नियुक्ति युक्तियुक्त व्यय पद्धति के अनुसार करने की स्वतंत्रता होगी।

5. राज्य द्वारा सहायता के विस्तार से अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थानों की प्रकृति एवं चरित्र नहीं बदलता। राज्य की ओर से सहायता राशि के समुचित उपयोग की शर्त रखी जा सकती है लेकिन अनुच्छेद 30(1) में प्रदत्त अधिकारों को बिना शिथिल किए।

संवैधानिक उपचारों का अधिकार

मूल अधिकारों की संवैधानिक घोषणा तब तक अर्थहीन, तर्कहीन एवं शक्तिविहीन है, जब तक कि कोई प्रभावी मशीनरी उसे लागू करने के लिए न हो। इस तरह अनुच्छेद 32 संवैधानिक उपचार का अधिकार प्रदान करता है। दूसरे शब्दों में, मूल अधिकारों के संरक्षण का अधिकार स्वयं में ही मूल अधिकार है। यही व्यवस्था, मूल अधिकारों को वास्तविक बनाती है। इसीलिए डॉ. अंबेडकर ने अनुच्छेद 32 को संविधान का सबसे महत्वपूर्ण अनुच्छेद बताया, ''एक अनुच्छेद जिसके बिना संविधान अर्थविहीन है, यह संविधान की आत्मा और हृदय है।'' उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी है कि अनुच्छेद 32 में संविधान की मूल विशेषताएं हैं। इस तरह इसे संविधान संशोधन के तहत बदला नहीं जा सकता। इसमें निम्नलिखित चार प्रावधान हैं:

(अ) मूल अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए समुचित कार्यवाहियों द्वारा उच्चतम न्यायालय में समावेदन करने का अधिकार प्रत्याभूत है।

(ब) उच्चतम न्यायालय को किसी भी मूल अधिकार के संबंध में निर्देश या आदेश जारी करने का अधिकार होगा। उसके द्वारा जारी रिट में शामिल हैं, बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, उत्प्रेषण एवं अधिकार पृच्छा।

(स) संसद को यह शक्ति प्राप्त है कि वह किसी अन्य न्यायालय सभी प्रकार के निर्देश, आदेश और रिट जारी करने की शक्ति प्रदान करे। यद्यपि यह उच्चतम न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों के विरुद्ध किसी पूर्वाग्रह से रहित होना चाहिए। यहां कोई अन्य न्यायालय उच्च न्यायालय सहित शामिल नहीं है। अनुच्छेद 226 पहले ही निर्धारित करता है कि ये शक्तियां उच्च न्यायालय में निहित हैं।

(द) उच्चतम न्यायालय में जाने के अधिकार को इस संविधान द्वारा अन्यथा उपबंधित के सिवाएं निलंबित नहीं किया जाएगा। इस तरह राष्ट्रपति राष्ट्रीय आपातकाल (अनुच्छेद 359) के तहत इनको स्थगित कर सकता है।

इस तरह यह स्पष्ट है कि उच्चतम न्यायालय नागरिकों के मूल अधिकारों का रक्षक एवं गारंटी देने वाला है। इसे इस प्रयोजन हेतु मूल और विस्तृत शक्तियां प्राप्त हैं। अधिकारों के हनन पर कोई व्यक्ति बिना अपीली प्रक्रिया के उच्चतम न्यायालय में जा सकता है। विस्तृत इसलिए क्योंकि इसकी शक्तियां केवल आदेश या निदेश देने तक सीमित नहीं है, यह सभी प्रकार की रिटें जारी कर सकता है।

अनुच्छेद 32 का उद्देश्य मूल अधिकारों के संरक्षण हेतु गारंटी, प्रभावी, सुलभ और संक्षेप उपचारों की व्यवस्था है। संविधान द्वारा अनुच्छेद 32 के अंतर्गत केवल मूल अधिकारों की ही गारंटी दी गई है, अन्य अधिकारों की नहीं, जैसे-गैर मूल संवैधानिक अधिकार, असंवैधानिक अधिकार, लौकिक अधिकार आदि। अनुच्छेद 32 के अनुसार, मूल अधिकारों का हनन इसके प्रयोग की अनिवार्य शर्त है। दूसरे शब्दों में, अनुच्छेद 32 के तहत उच्चतम न्यायालय, मूल अधिकारों संबंधित मामलों पर प्रश्न नहीं उठा सकता। अनुच्छेद 32 केवल इसलिए प्रयुक्त नहीं किया जा सकता कि केवल कार्यपालिका आदेश या विधायिका की सांविधानिकता का निर्धारण किया जा सके। इसे किसी मूल अधिकार के सीधे हनन में ही प्रयुक्त किया जा सकता है।

मूल अधिकारों के क्रियान्वयन के बारे में उच्चतम न्यायालय का न्यायिक क्षेत्र मूल तो है पर अनन्य नहीं। उसका जुड़ाव अनुच्छेद

226 के तहत उच्च न्यायालय के न्यायिक क्षेत्र से है। इस तरह उच्च न्यायालय की मूल शक्तियों में निर्देश जारी करना, आदेश एवं रिट जारी करना मूल अधिकारों का क्रियान्वयन आदि आता है। इसका अर्थ है कि जब किसी नागरिक के मूल अधिकारों का हनन होता है तो संबंधित पक्ष के पास या तो उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में सीधे जाने का विकल्प होता है।

अनुच्छेद 32 द्वारा प्रदत्त अधिकार स्वयं ही मूल अधिकार है (मूल अधिकारों का हनन होने पर उच्चतम न्यायालय में जाने का अधिकार)। इस तरह अनुच्छेद 32 के तहत वैकल्पिक उपचार आदि पर कोई रोक नहीं है। उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि जब अनुच्छेद 226 के तहत संबंधित दल के पास उच्च न्यायालय के माध्यम से राहत का विकल्प मौजूद है, तो उसे पहले उच्च न्यायालय ही जाना चाहिए।

रिट—प्रकार एवं क्षेत्र

उच्चतम न्यायालय (अनुच्छेद 32 के तहत) एवं उच्च न्यायालय (अनुच्छेद 226 के तहत) रिट जारी कर सकते हैं। ये हैं—बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, उत्प्रेषण एवं अधिकार पृच्छा। संसद (अनुच्छेद 32 के तहत) किसी अन्य न्यायालय को भी इन रिटों को जारी करने का अधिकार दे सकती है, चूंकि अभी तक ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। केवल उच्चतम एवं उच्च न्यायालय ही रिट जारी कर सकते हैं कोई अन्य न्यायालय नहीं। 1950 से पहले केवल कलकत्ता, बंबई एवं मद्रास उच्च न्यायालय को ही रिट जारी करने का अधिकार प्राप्त था। अनुच्छेद, 226 अब सभी उच्च न्यायालयों को रिट जारी करने की शक्ति प्रदान करता है।

ये रिट, अंग्रेजी कानून से लिए गए हैं, जहां इन्हें 'विशेषाधिकार रिट' कहा जाता था। इन्हें राजा द्वारा जारी किया जाता है, जिन्हें अब भी 'न्याय का झरना' कहा जाता है। आगे चलकर उच्च न्यायालय ने रिट जारी करना प्रारंभ कर दिया। ये रिट ब्रिटिश लोगों के अधिकारों और स्वतंत्रता को कायम रखने के लिए असाधारण उपचार थीं।

उच्चतम न्यायालय का रिट संबंधी न्यायिक क्षेत्र उच्च न्यायालय से तीन प्रकार से भिन्न हैं:

1. उच्चतम न्यायालय केवल मूल अधिकारों के क्रियान्वयन को लेकर रिट जारी कर सकता है, जबकि उच्च न्यायालय इनके अलावा किसी और उद्देश्य को लेकर भी इसे जारी कर सकते हैं। 'किसी अन्य उद्देश्य' शब्द का अभिप्राय किसी सामान्य कानूनी अधिकार के संबंध में भी है। इस तरह उच्चतम न्यायालय के रिट संबंधी न्यायिक अधिकार, उच्च न्यायालय से कम विस्तृत हैं।
2. उच्चतम न्यायालय किसी एक व्यक्ति या सरकार के विरुद्ध रिट जारी कर सकता है, जबकि उच्च न्यायालय सिर्फ संबंधित राज्य के व्यक्ति या अपने क्षेत्र के राज्य को या यदि मामला दूसरे राज्य से संबंधित हो तो वहां के खिलाफ ही जारी कर सकता है। इस तरह रिट जारी करने के संबंध में उच्चतम न्यायालय का क्षेत्रीय न्यायक्षेत्र[15], ज्यादा विस्तृत है।
3. अनुच्छेद 32 के अंतर्गत, उपचार अपने आप में मूल अधिकार हैं। इसलिए उच्चतम न्यायालय अपने रिट न्यायक्षेत्र को नकार नहीं सकता। दूसरी ओर, अनुच्छेद 226 के तहत उपचार विवेकानुसार है इसलिए उच्च न्यायालय अपने रिट संबंधी न्याय क्षेत्र के क्रियान्वयन को नकार सकता है। अनुच्छेद 32 उच्चतम न्यायालय को मूल अधिकारों के संबंध में उच्च न्यायालय को प्राप्त अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति प्रदान नहीं करता है। इस तरह उच्चतम न्यायालय को मूल अधिकारों का रक्षक एवं गारंटी देने वाला बनाया गया है।

अब हम अनुच्छेद 32 एवं 226 में उल्लिखित विभिन्न प्रकार के रिटों के अभिप्राय एवं क्षेत्र को समझेंगे:

बंदी प्रत्यक्षीकरण

इसे लैटिन भाषा से लिया गया है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है 'को प्रस्तुत किया जाए'। यह उस व्यक्ति के संबंध में न्यायालय द्वारा जारी आदेश है, जिसे दूसरे द्वारा हिरासत में रखा गया है, उसे इसके सामने प्रस्तुत किया जाए। तब न्यायालय मामले की जांच करता है, यदि हिरासत में लिए गए व्यक्ति का मामला अवैध है तो उसे स्वतंत्र किया जा सकता है। इस तरह यह किसी व्यक्ति को जबरन हिरासत में रखने के विरुद्ध है।

बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट सार्वजनिक प्राधिकरण हो या व्यक्तिगत दोनों के खिलाफ जारी किया जा सकता है । यह रिट तब जारी नहीं किया की जा सकती है। यह रिट तब जारी नहीं किया जा सकता है जब यदि (i) हिरासत कानून सम्मत है, (ii) कार्यवाही किसी विधानमंडल या न्यायालय की अवमानना के तहत हुई हो, (iii) न्यायालय के द्वारा हिरासत एवं (iv) हिरासत न्यायालय के न्यायक्षेत्र से बाहर हुई हो।

परमादेश

इसका शाब्दिक अर्थ है 'हम आदेश देते हैं'। यह एक नियंत्रण है, जिसे न्यायालय द्वारा सार्वजनिक अधिकारियों को जारी किया जाता है ताकि उनसे उनके कार्यों और उसे नकारने के संबंध में पूछा जा सके। इसे किसी भी सार्वजनिक इकाई, निगम, अधीनस्थ न्यायालयों, प्राधिकरणों या सरकार के खिलाफ समान उद्देश्य के लिए जारी किया जा सकता है।

परमादेश रिट जारी नहीं किया जा सकता—(i) निजी व्यक्तियों या इकाई के विरुद्ध, (ii) ऐसे विभाग जो गैर-संवैधानिक हैं, (iii) जब कर्तव्य विवेकानुसार हो, जरूरी नहीं, (iv) संविदात्मक दायित्व को लागू करने के विरुद्ध, (v) भारत के राष्ट्रपति या राज्यों के राज्यपालों के विरुद्ध और (vi) उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश जो न्यायिक क्षमता में कार्यरत हैं।

प्रतिषेध

इसका शाब्दिक अर्थ 'रोकना'। इसे किसी उच्च न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालयों को या अधिकरणों को अपने न्यायक्षेत्र से उच्च न्यायिक कार्यों को करने से रोकने के लिए जारी किया जाता है। जिस तरह परमादेश सीधे सक्रिय रहता है, प्रतिशेध सीधे सक्रिय नहीं रहता।

प्रतिषेध संबंधी रिट सिर्फ न्यायिक एवं अर्ध-न्यायिक प्राधिकरणों के विरुद्ध ही जारी किए जा सकते हैं। यह प्रशासनिक प्राधिकरणों, विधायी निकायों एवं निजी व्यक्ति या निकायों के उपलब्ध नहीं है।

उत्प्रेषण

इसका शाब्दिक अर्थ 'प्रमाणित होना' या 'सूचना देना' है। इसे एक उच्च न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालयों को या अधिकरणों को या लंबित मामलों के स्थानांतरण को सीधे या पत्र जारी कर किया जाता है। इसे अतिरिक्त न्यायिक क्षेत्र या न्यायिक क्षेत्र की कमी या कानून में खराबी के आधार पर जारी किया जा सकता है। इस तरह प्रतिषेध से हटकर जो कि केवल निवारक है; उत्प्रेषण निवारक एवं सहायक दोनों तरह का है।

जैसा कि पहले उत्प्रेषण की रिट सिर्फ न्यायिक या अर्ध न्यायिक प्राधिकरणों के खिलाफ ही जारी किया जा सकता था, प्रशासनिक इकाइयों के खिलाफ नहीं। हालांकि 1991 में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि उत्प्रेषण व्यक्तियों के अधिकारों को प्रभावित करने वाले प्रशासनिक प्राधिकरणों के खिलाफ भी जारी किया जा सकता है।

प्रतिषेध की तरह उत्प्रेषण भी विधिक निकायों एवं निजी व्यक्तियों या इकाइयों के विरुद्ध उपलब्ध नहीं है।

अधिकार पृच्छा

शाब्दिक संदर्भ में इसका अर्थ किसी 'प्राधिकृत या वारंट के द्वारा' है। इसे न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति द्वारा सार्वजनिक कार्यालय में दायर अपने दावे की जांच के लिए जारी किया जाता है। अतः यह किसी व्यक्ति द्वारा लोक कार्यालय के अवैध अनाधिकार ग्रहण करने को रोकता है।

रिट को पूरक सार्वजनिक कार्यालयों के मामले में तब जारी किया जा सकता है जब उसका निर्माण संवैधानिक हो। इसे मंत्रित्व कार्यालय या निजी कार्यालय के लिए जारी नहीं किया जा सकता।

अन्य चार रिटों से हटकर इसे किसी भी इच्छुक व्यक्ति द्वारा जारी किया जा सकता है न कि पीड़ित व्यक्ति द्वारा।

सशस्त्र बल एवं मूल अधिकार

अनुच्छेद 33 संसद को यह अधिकार देता है कि वह सशस्त्र बलों, अर्धसैनिक बलों, पुलिस बलों, खुफिया एजेंसियों एवं अन्य के मूल अधिकारों पर युक्तियुक्त प्रतिबंध लगा सके। इस व्यवस्था का उद्देश्य, उनके समुचित कार्य करने एवं उनके बीच अनुशासन बनाए रखना है।

अनुच्छेद 33 के अंतर्गत विधि निर्माण का अधिकार सिर्फ संसद को है न कि राज्य विधान मंडल को। इस तरह के संसद द्वारा बनाए गए कानून को किसी न्यायालय में किसी मूल अधिकार के उल्लंघन के संबंध में चुनौती नहीं दी जा सकती है।

इसी तरह संसद ने सैन्य अधिनियम (1950), नौ सेना अधिनियम (1950), वायु सेना अधिनियम (1950), पुलिस बल (अधिकारों पर निषेध) अधिनियम 1966, सीमा सुरक्षा बल अधिनियम आदि प्रभावी बनाए। ये अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, संगठन बनाने के अधिकार, श्रमिक संघों या राजनीतिक संगठनों का सदस्य बनने का अधिकार, प्रेस से मुखातिब होने का अधिकार, सार्वजनिक बैठकों या प्रदर्शन का अधिकार आदि पर रोक लगाते हैं।

'सैन्य बलों के सदस्य' अभिव्यक्ति का अभिप्राय इसमें वो कर्मचारी भी शामिल हैं, जो सेना में नाई, बढ़ई, मैकेनिक, बावर्ची, चौकीदार, बूट बनाने वाला, दर्जी आदि का कार्य करते हैं।

तालिका 7.3 *मॉर्शल लॉ बनाम राष्ट्रीय आपातकाल*

मार्शल लॉ (सैन्य कानून)	राष्ट्रीय आपातकाल
1. यह सिर्फ मूल अधिकारों को प्रभावित करता है।	1. यह न केवल मूल अधिकारों को प्रभावित करता है, बल्कि केंद्र-राज्य संबंधों को भी प्रभावित करता है। इसके अलावा राजस्व वितरण एवं निकायी शक्तियों को प्रभावित करने के साथ संसद का कार्यकाल भी बढ़ा सकता है।
2. यह सरकार एवं साधारण कानूनी न्यायालयों को निलंबित करता है।	2. यह सरकार एवं सामान्य कानूनी न्याय को जारी रखता है।
3. यह कानून एवं व्यवस्था के भंग होने पर उसे दोबारा निर्धारित करता है।	3. यह सिर्फ तीन आधारों पर ही लागू हो सकता है—युद्ध, बाहरी आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह।
4. इसे देश के कुछ विशेष क्षेत्रों में ही लागू किया जा सकता है।	4. इसे पूरे देश या देश के किसी हिस्से में लागू किया जा सकता है।
5. इसके लिए संविधान में कोई विशेष व्यवस्था नहीं है। यह अव्यक्त है।	5. संविधान में इसकी विशेष व्यवस्था है, यह सुस्पष्ट एवं विस्तृत है।

अनुच्छेद 32 के अंतर्गत निर्मित संसदीय विधि, जहां तक मूल अधिकारों को लागू करने का संबंध है, कोर्ट मार्शल (सैन्य विधि के अंतर्गत स्थापित अधिकरण) को उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के रिट क्षेत्राधिकार से अपवर्जित करती है।

मार्शल लॉ एवं मूल अधिकार

अनुच्छेद 34 मूल अधिकारों पर तब प्रतिबंध लगाता है जब भारत में कहीं भी मार्शल लॉ लागू हो। यह संसद को इस बात की शक्ति देता है कि किसी भी सरकारी कर्मचारी को या अन्य व्यक्ति को उसके द्वारा किए जाने वाले कार्य की व्यवस्था को बरकरार रखे या पुनर्निर्मित करे संसद किसी मार्शल लॉ वाले क्षेत्र में जारी दंड या अन्य आदेश को वैधता प्रदान कर सकता है।

संसद द्वारा बनाए गए क्षतिपूर्ति अधिनियम को किसी न्यायालय में केवल इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि वह किसी मूल अधिकार का उल्लंघन है।

मार्शल लॉ के सिद्धांत को अंग्रेजी कानून से लिया गया। हालांकि 'मार्शल लॉ' की संविधान में व्याख्या नहीं की गई पर इसका शाब्दिक अर्थ है-सैन्य शासन। यह ऐसी स्थिति का परिचायक है, जहां सेना द्वारा सामान्य प्रशासन को अपने नियम कानूनों के तहत संचालित किया जाता है। इस तरह वहां साधारण कानून निलंबित हो जाता है और सरकारी कार्यों को सैन्य अधिकरणों के अधीन किया जाता है।

यह सैन्य कानून से अलग है, जो कि सशस्त्र बलों पर लागू होता है। मार्शल लॉ घोषित होने पर संविधान में कोई विशेष प्राधिकरण की व्यवस्था नहीं है, हालांकि इसे अनुच्छेद 34 के तहत भारत में कहीं भी लागू किया जा सकता है। मार्शल लॉ को असाधारण परिस्थितियां, जैसे—युद्ध, अशांति, दंगे या कानून का उल्लंघन आदि में लागू किया जाता है। इसका न्यायोचित उद्देश्य यही है कि समाज में व्यवस्था बनाई रखी जा सके।

मार्शल लॉ के क्रियान्वयन के समय सैन्य प्रशासन के पास जरूरी कदम उठाने के लिए असाधारण अधिकार मिल जाते हैं वे अधिकारों पर प्रतिबंध यहां तक कि किसी मामले में नागरिकों को मृत्युदंड तक लागू कर सकता है।

उच्चतम न्यायालय ने घोषणा की कि मार्शल लॉ प्रतिक्रियावादी परिणाम के तहत बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट को निलंबित नहीं कर सकता।

अनुच्छेद 34 के तहत मार्शल लॉ की घोषणा अनुच्छेद 352 के अंतर्गत राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा से भिन्न है। दोनों के बीच विभेद या अंतर को तालिका 7.3 में दर्शाया गया है।

कुछ मूल अधिकारों का प्रभाव

अनुच्छेद 35 केवल संसद को कुछ विशेष मूल अधिकारों को प्रभावी बनाने के लिए कानून बनाने की शक्ति प्रदान करता है। यह अधिकार राज्य विधानमंडल को नहीं प्राप्त है। यह व्यवस्था

सुनिश्चित करती है कि भारत में मूल अधिकारों एवं दंड व उनके प्रकार में एकता है। इस दिशा में अनुच्छेद 35 निम्नलिखित व्यवस्था करता है:

1. संसद के पास (विधानमंडल के पास नहीं) निम्नलिखित मामलों में कानून बनाने का अधिकार होगा:

(अ) किसी राज्य या केंद्र शासित या स्थानीय या अन्य प्राधिकरण में किसी रोजगार या नियुक्ति हेतु निवास की व्यवस्था (अनुच्छेद 16)।

(ब) मूल अधिकारों के क्रियान्वयन के लिए निर्देश, आदेश, रिट जारी करने के लिए उच्चतम एवं उच्च न्यायालयों को छोड़कर अन्य न्यायालयों की सशक्त बनाना (अनुच्छेद 32)।

(स) सशस्त्र बलों, पुलिस बलों आदि के सदस्यों के मूल अधिकारों पर प्रतिबंध (अनुच्छेद 33)।

(द) किसी सरकारी कर्मचारी या अन्य व्यक्ति को किसी क्षेत्र में मार्शल लॉ के दौरान किसी कृत्य हेतु क्षतिपूर्ति देना (अनुच्छेद 34)।

2. संसद के पास (राज्य विधानमंडलों के पास नहीं) मूल अधिकारों के तहत दंडित करने के लिए कानून बनाने का अधिकार होगा। इसमें निम्नलिखित शामिल हैं:

(अ) अस्पृश्यता (अनुच्छेद 17) एवं

(ब) मानव के दुर्व्यापार और बलात् श्रम का प्रतिषेध (अनुच्छेद 23)।

इसके अतिरिक्त संसद संविधान के लागू होने के बाद उपरोक्त कार्यों के तहत दंड के लिए कानून बनाती है। इस तरह इसे संसद के लिए अनिवार्य किया जाता है कि वह ऐसे कानून बनाए।

3. उपरोक्त वर्णित मामलों के संदर्भ में संविधान के अस्तित्व में आने के समय प्रभावी कोई विधि तब तक प्रभावी रहेगी जब तक संसद द्वारा इसे परिवर्तित या निरसित संशोधित नहीं किया जाता।

यह उल्लेखनीय होना चाहिए कि अनुच्छेद 35 संसद के उपरोक्त विषयों पर कानून बनाने का प्रावधान सुनिश्चित करता है। यद्यपि इनमें से कुछ अधिकार राज्य विधानमंडल के पास भी होते हैं (यानि राज्य सूची)।

संपत्ति के अधिकार की वर्तमान स्थिति

वास्तव में संविधान के भाग 3 में उल्लिखित 7 मूल अधिकारों में से संपत्ति का अधिकार एक था। अनुच्छेद 19 (1) (च) एवं अनुच्छेद 31 में वर्णित था। अनुच्छेद 19(1)(च) प्रत्येक नागरिक को संपत्ति को अधिग्रहण करने उसको रखने एवं निपटाने की गारंटी देता था, जबकि दूसरी तरफ अनुच्छेद 31 प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह नागरिक हो या गैर-नागरिक को अपनी संपत्ति वंचन करने के खिलाफ अधिकार प्रदान करता है। इसमें यह व्यवस्था है कि बिना विधि सम्मत कानून के कोई भी संपत्ति पर अधिकार नहीं जताएगा। यह राज्य को किसी व्यक्ति की संपत्ति अधिग्रहण कर दो शर्तों के अधार पर शक्ति प्रदान करता है-(अ) इसे सार्वजनिक उद्देश्य के लिए किया जाना चाहिए, और; (ब) इसका हरजाना (क्षतिपूर्ति) उसके मालिक को दिया जाना चाहिए।

संविधान लागू होने के समय से ही संपत्ति का मूल अधिकार सबसे अधिक विवादास्पद रहा। इसके कारण संसद व उच्चतम न्यायालय के बीच विवाद उत्पन्न हुआ। इस पर कई सारे संविधान संशोधन हुए। उनमें पहला, चौथा, सातवां, पच्चीसवां, उनतालिसवां, चालीसवां एवं बयालिसवां संशोधन शामिल हैं। इन संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 31क, 31ख और 31ग को जोड़ा गया और समय-समय पर उच्चतम न्यायालय के फैसले को इस विवादास्पद अधिकार के संबंध में कम किया गया। इनमें से अधिकतर मामले निजी संपत्ति के लिए अनुरोध, उनके अधिग्रहण एवं उनके क्षतिपूर्ति के भुगतान के संबंध में थे।

इस प्रकार 44वें संशोधन अधिनियम 1978 द्वारा मूल अधिकारों में से संपत्ति के अधिकार को भाग 3 में अनुच्छेद 19(1)(च) और अनुच्छेद 31 को निरसित किया गया। 'संपत्ति का अधिकार' शीर्षक के तहत भाग 12 में नए अनुच्छेद 300 A को शुरू किया गया। इसमें व्यवस्था दी गई कि कोई भी व्यक्ति कानून के बिना संपत्ति से वंचित नहीं किया जाएगा। इस तरह संपत्ति का अधिकार अब भी एक कानूनी या संवैधानिक अधिकार है। यद्यपि यह कोई मूल अधिकार नहीं है। यह संविधान के मूल ढांचे का भी हिस्सा नहीं है।

संपत्ति का अधिकार एक विधिक अधिकार की तरह (जैसा कि मूल अधिकारों से अलग) निम्नलिखित तरीकों से लागू होता है:

(अ) इसे बिना संविधान संशोधन के संसद के साधारण कानून के तहत नियमित, कम या पुनर्निर्धारित किया जा सकता है।

(ब) यह कार्यकारी क्रिया के खिलाफ निजी संपत्ति की रक्षा करता है लेकिन विधायी कार्य के खिलाफ नहीं।

(स) उल्लंघन के मामले में पीड़ित व्यक्ति अनुच्छेद 32 (संवैधानिक उपचार के अधिकार जिसमें रिट शामिल है) के तहत सीधे उच्चतम न्यायालय नहीं जा सकता। वह अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय जा सकता है।

(द) राज्य द्वारा निजी संपत्ति के अधिग्रहण या अनुरोध के मामले में हरजाने के अधिकार की कोई गारंटी नहीं।

इस तरह संपत्ति के मूल अधिकार को भाग 3 से समाप्त कर दिया गया है। भाग 3 में अब भी यह व्यवस्था है कि राज्य द्वारा निजी संपत्ति के अधिग्रहण पर हरजाने का अधिकार होगा। इन दो मामलों में भुगतान होगा:

(अ) जब राज्य द्वारा किसी अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान (अनुच्छेद 30) की संपत्ति का अधिग्रहण किया जाए और

(ब) जब राज्य उस संपत्ति का अधिग्रहण करे, जिस पर व्यक्ति अपनी फसल उगा रहा है और भूमि सांविधिक निर्धारित सीमा के अंदर (अनुच्छेद 31क)।

पहली व्यवस्था को 44वें संशोधन अधिनियम (1978) के तहत जोड़ा गया, जबकि दूसरी व्यवस्था को 17वें संशोधन अधिनियम (1964) के तहत।

इस तरह अनुच्छेद 31क, 31ख, और 31ग को मूल अधिकारों के प्रतिवाद के रूप में स्थापित किया गया।

मूल अधिकारों के अपवाद

1. संपदाओं आदि के अर्जन के लिए उपबंध करने वाली विधियों की व्यावृत्ति

अनुच्छेद 31क[16] विधियों की पांच श्रेणियों से व्यावृत्ति प्रदान करता है कि इन्हें अनुच्छेद 14 (विधि के समक्ष समता और विधियों की समान संरक्षण) और अनुच्छेद 19 (वाक्-स्वातंत्र्य, सम्मेलन, संचरण इत्यादि के संबंध में मूल अधिकारों की सुरक्षा) द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर चुनौती और अवैध नहीं ठहराया जा सकता।

(अ) राज्य द्वारा संपदाओं का अधिग्रहण[17] और संबंधित अधिकार।

(ब) राज्य द्वारा संपत्ति के प्रबंधन का दायित्व संभालना।

(स) निगमों का सम्मिश्रण।

(द) निगमों के शेयरधारकों या निदेशकों के अधिकारों का पुनर्निर्धारण या समाप्ति।

(इ) खनन पट्टे का पुनर्निर्धारण या उनकी समाप्ति।

अनुच्छेद 31क राज्य को न्यायिक समीक्षा से उन्मुक्ति प्रदान नहीं करता है, जब इसे राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखा गया हो और इसे सहमति प्राप्त हो गई हो।

यह अनुच्छेद इस बात की भी व्यवस्था करता है कि राज्य अधिगृहीत ऐसी भूमि का जिसका उपयोग कोई व्यक्ति सांविधिक निर्धारित सीमा के अंदर और फसल उत्पादन के लिये कर रहा होगा भूमि का बाजार मूल्य के अनुसार क्षतिपूर्ति देगा।

2. कुछ अधिनियमों और विनियमों का विधिमान्यकरण

अनुच्छेद 31ख नौवीं अनुसूची[18] में उल्लिखित अधिनियमों एवं नियमों को व्यावृत्ति प्रदान करता है, इस तरह अनुच्छेद 31 ख का क्षेत्र 31क से ज्यादा विस्तृत है। अनुच्छेद 31ख नौवीं अनुसूची में सम्मिलित किसी भी विधि को सभी मूल अधिकारों से उन्मुक्ति प्रदान करता है फिर चाहे विधि अनुच्छेद 31क में उल्लिखित पांच श्रेणियों में से किसी के अंतर्गत हो या नहीं।

यद्यपि आई.आर. कोएल्हो केस[18a] में उच्चतम न्यायालय ने अपने एक निर्णय में कहा कि नौवीं अनुसूची में सम्मिलित विधियों को न्यायिक समीक्षा से उन्मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। न्यायालय ने कहा कि न्यायिक समीक्षा संविधान की मूल विशेषता है और किसी विधि को नौवीं अनुसूची के अंतर्गत रखे, इसकी यह विशेषता समाप्त नहीं की जा सकती। इसने निर्णय दिया कि 24 अप्रैल, 1973 के बाद नौवीं अनुसूची में सम्मिलित विधियों को न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है, यदि वे संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 19 और 21 या इसके मूल रूप का उल्लंघन मूल रूप या मूल विशेषताओं सिद्धांत को प्रतिपादित किया। 24 अप्रैल, 1973 को उच्चतम न्यायालय ने पहली बार केशवानंद भारती मामले में अपने ऐतिहासिक फैसले में संविधान के मौलिक ढ़ांचे के सिद्धांत को प्रतिपादित किया।[19]

मूलत: (1951 में) नौवीं सूची में सिर्फ 13 अधिनियमों एवं विनियमों को रखा गया था। लेकिन इस समय (वर्ष 2016 तक) इनकी संख्या 282[20] हो गई है। इनमें, राज्य विधानमंडल के अधिनियम एवं विनियम हैं, जो भू-सुधार से संबंधित हैं तथा जमींदारी व्यवस्था को समाप्त करना और संसद के कार्य क्षेत्र के अन्य मामले शामिल हैं।

3. कुछ निदेशक तत्वों को प्रभावी करने वाली विधियों की व्यावृत्ति

25वें संशोधन अधिनियम 1971 द्वारा यथा समाहित अनुच्छेद 31ग में निम्नांकित दो उपबंध हैं:

(क) कोई भी कानून जिसमें अनुच्छेद 39(ख)[21] अथवा (ग)[22] में विनिर्दिष्ट सामाजवादी निर्देशक सिद्धांतों को लागू करने की मांग की गयी है, अनुच्छेद 14 (विधि के समक्ष समानता और समान कानूनी संरक्षण) अथवा अनुच्छेद 19 (अभिव्यक्ति, सभा करने, देश भर में घूमने आदि के संबंध में छह अधिकारों की रक्षा) द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों के उल्लांन के आधार पर अमान्य घोषित नहीं होगा।

(ख) कोई भी विधि जो यह घोषणा करे कि यह ऐसी नीति को प्रभावी करने हेतु है उसे किसी भी न्यायालय में इस आधार पर चुनौती दी जा सकती है कि यह ऐसी नीति को प्रभावी नहीं करता है।

केशवानंद भारती मामले (1973)[23] में उच्चतम न्यायालय ने उपरोक्त अनुच्छेद 31ग के द्वितीय प्रावधान को संविधान की महत्वपूर्ण विशेषता न्यायिक समीक्षा के आधार पर गैर-संवैधानिक बताया गया। हालांकि अनुच्छेद 31ग के पहले प्रावधान को संवैधानिक एवं वैध माना है।

42वें संशोधन अधिनियम (1976) ने अनुच्छेद 31ग के उपरोक्त पहले प्रावधान के क्षेत्र में न केवल अनुच्छेद 39(ख) या (ग) में बल्कि संविधान के भाग-4 में वर्णित किसी निदेशक तत्व को लागू करने के लिए किसी विधि की अपनी संरक्षा में सम्मिलित कर विस्तृत किया। हालांकि इस विस्तार को उच्चतम न्यायालय द्वारा *मिनर्वा मिल्स मामले* (1980)[24] में असंवैधानिक एवं अवैध घोषित किया गया।

मूल अधिकारों की आलोचना

संविधान के भाग III में वर्णित मूल अधिकारों की व्यापक एवं मिश्रित आलोचनाएं भी हुईं हैं। आलोचकों के तर्क इस प्रकार हैं:

1. व्यापक सीमाएं

ये असंख्य अपवादों, प्रतिबंधों, गुणों एव व्याख्याओं के विषय हैं। इस तरह आलोचकों ने इस बात का उल्लेख किया है कि एक तरफ तो संविधान मूल अधिकार प्रदान करता है और दूसरी तरफ उन्हें छीन लेता है, जसपत राय कपूर इस संबंध में कहते हैं कि मूल अधिकारों के भाग को इस तरह कहा जाना चाहिए- 'मूल अधिकारों की सीमाएं' या 'मूल अधिकार एवं उसमें निहित सीमाएं'।

2. कोई सामाजिक एवं आर्थिक अधिकार नहीं

यह सूची व्यापक नहीं है। इसमें मुख्यत: राजनीतिक अधिकारों का उल्लेख है। इसमें महत्वपूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों की व्यवस्था नहीं है, जैसे-सामाजिक सुरक्षा का अधिकार, काम का अधिकार, रोजगार का अधिकार, विश्राम एवं सुविधा का अधिकार आदि। ये अधिकार उन्नत लोकतांत्रिक देशों के नागरिकों को प्राप्त हैं। समाजवादी संविधानों, जैसे-रूस एवं चीन में भी ऐसे अधिकारों की व्यवस्था है।

3. स्पष्टता का अभाव

इनकी व्याख्या अस्पष्ट, अनिश्चित एवं धुंधली है। कई अभिव्यक्तियां एवं शब्द, जैसे-'लोक व्यवस्था', 'अल्पसंख्यक', 'उचित प्रतिबंध', 'सार्वजनिक हित' आदि सही व्याख्यायित नहीं हैं। इसको समझाने के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया गया है, वह एक आम आदमी के समझने के लिए काफी जटिल है। ऐसा आरोप भी लगाया जाता है कि संविधान को वकीलों द्वारा वकीलों के लिए बनाया गया है। सर आइवर जेनिंग्स ने भारतीय संविधान को 'वकीलों के लिए स्वर्ग' की संज्ञा दी है।

4. स्थायित्व का अभाव

ये अलंघनीय और अपरिवर्तनीय नहीं हैं। जैसे कि संसद इनमें कटौती कर सकती है या समाप्त कर सकती है। उदाहरण के लिए संपत्ति के मूल अधिकार को 1978 में समाप्त कर दिया गया। ये संसद में बहुमत वाले राजनीतिज्ञों का एक हथियार हैं। न्याय क्षेत्र द्वारा बनाया गया 'मूल ढांचे का सिद्धांत', जिसमें मूल अधिकारों में कटौती या उनको समाप्त करने के संसद में अधिकार की सीमाएं निहित हैं।

5. आपातकाल के दौरान स्थगन

राष्ट्रीय आपातकाल के समय इनके क्रियान्वयन का स्थगन (केवल अनुच्छेद 20 और 21 के) इन अधिकारों पर एक और प्रतिबंध

है। यह व्यवस्था लोकतांत्रिक व्यवस्था की जड़ों को दुर्बल करती है तथा करोड़ों निर्दोष लोगों के अधिकारों को समाप्त करती है। आलोचकों के अनुसार, मूल अधिकारों को हमेशा रहना चाहिए चाहे–आपातकाल हो या सामान्य स्थिति।

6. महंगा उपचार

न्यायपालिका को इन अधिकारों की रक्षा एवं विधानमंडल व कार्यपालिका द्वारा इस पर हस्तक्षेप के विरुद्ध जिम्मेदार बनाया गया है लेकिन न्यायिक प्रक्रिया आम आदमी के लिए काफी खर्चीली है। इसलिए आलोचक कहते हैं कि भारतीय समाज में अधिकार सुविधा मूलतः धनाढ्य लोगों के लिए ही है।

7. निवारक निरोध

आलोचकों का मत है कि निवारक निरोध का उपबंध (अनुच्छेद 22) मूल अधिकारों की मुख्य भावना से इसे दूर करता है। यह राज्य को मनमानी शक्ति प्रदत्त करती है और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को नकारती है। यह इस आलोचना को न्यायोचित ठहराती है कि भारत का संविधान, व्यक्तिगत अधिकारों की तुलना में राज्य के अधिकारों की ज्यादा व्यवस्था करता है। किसी भी लोकतांत्रिक देश में निवारक निरोध को भारत की तरह संविधान का आंतरिक भाग नहीं बनाया गया है।

8. प्रतिमान दर्शन नहीं

कुछ आलोचकों के अनुसार, मूल अधिकारों पर पाठ किसी दार्शनिक सिद्धांत की उपज नहीं है। सर आइवर जेनिंग्स ने कहा है कि मूल अधिकारों को किसी प्रतिमान दर्शन[25] के आधार पर घोषित नहीं किया गया है। आलोचक कहते हैं कि ये उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के लिए मूल अधिकारों की व्याख्या में कठिनाई उत्पन्न करते हैं।

मूल अधिकारों का महत्व

उपरोक्त आलोचनाओं के बावजूद निम्नलिखित मामलों में मूल अधिकार महत्वपूर्ण हैं:

1. ये देश में लोकतांत्रिक व्यवस्था को स्थापित करते हैं।
2. ये व्यक्ति की भौतिक एवं नैतिक सुरक्षा के लिए आवश्यक स्थिति उत्पन्न करते हैं।
3. ये व्यक्तिगत स्वतंत्रता के रक्षक हैं।
4. वे देश में विधि के शासन की स्थापना करते हैं।
5. ये अल्पसंख्यकों एवं समाज के कमजोर वर्गों के हितों की रक्षा करते हैं।
6. ये भारतीय राज्य की धर्म निरपेक्ष छवि को बल प्रदान करते हैं।
7. ये सरकार के शासन की पूर्णता पर नियंत्रण करते हैं।
8. ये सामाजिक समानता एवं सामाजिक न्याय की आधारशिला रखते हैं।
9. ये व्यक्तिगत सम्मान को बनाए रखना सुनिश्चित करते हैं।
10. ये लोगों को राजनीतिक एवं प्रशासनिक प्रणाली में भाग लेने का अवसर प्रदान करते हैं।

भाग 3 के बाहर अधिकार

भाग 3 में सम्मिलित मूल अधिकारों के अतिरिक्त संविधान के कुछ अन्य भागों में अन्य अधिकार वर्णित हैं। इन अधिकारों को सांविधानिक अधिकार या विधिक अधिकार या गैर–मूल अधिकार भी कहा जाता है। ये हैं:

1. विधि के प्राधिकार के बिना किसी कर को अधिरोपित या संगृहीत न किया जाना (भाग–12 में अनुच्छेद 265)।
2. विधि के प्राधिकार के बिना व्यक्तियों को संपत्ति से वंचित न किया जाना (भाग 13 में अनुच्छेद 300क)।
3. भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र व्यापार, वाणिज्य और समागम अबाध होगा (भाग 13 में अनुच्छेद 301)।
4. लोक सभा और राज्यों की विधानसभाओं के लिए निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होंगे (भाग 15 में अनुच्छेद 326)।

यद्यपि उपरोक्त अधिकार समान रूप से न्यायोचित हैं, पर ये यह मूल अधिकारों से भिन्न हैं। मूल अधिकार का उल्लंघन होने पर दुखी व्यक्ति अनुच्छेद 32, जोकि स्वयं में मूल अधिकार है, के अंतर्गत सीधे सर्वोच्च न्यायालय जा सकता है। परन्तु उपरोक्त अधिकारों के उल्लंघन के मामले में व्यक्ति इस सांविधानिक उपचार को प्रयुक्त नहीं कर सकता। वह सामान्य मुकदमों या अनुच्छेद 226 (उच्च न्यायालय का रिट क्षेत्राधिकार) के तहत केवल उच्च न्यायालय में जा सकता है।

तालिका 7.4 *मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित अनुच्छेद, एक नजर में*

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
	सामान्य
12.	राज्य की परिभाषा
13.	कानून जो मूल अधिकारों के प्रति असंगति अथवा अप्रतिष्ठापूर्ण हैं।
14.	कानून के समक्ष समानता
15.	धर्म, प्रजाति अथवा नस्ल, जाति, लिंग अथवा जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव का निषेध।
16.	सार्वजनिक रोजगारों के मामलों में अवसर की समानता
17.	अस्पृश्यता का उन्मूलन
18.	उपाधियों का उन्मूलन
	स्वतंत्रता का अधिकार
19.	अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से सम्बन्धित अधिकारों का संरक्षण
20.	अपराधों के लिए दोषसिद्धि से संरक्षण
21.	जीवन तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का संरक्षण
21A.	शिक्षा का अधिकार
22.	कुछ मामलों में गिरफ्तारी तथा निरुद्धता से संरक्षण
	शोषण के विरुद्ध अधिकार
23.	मानव व्यापार तथा बलात् श्रम से संरक्षण
24.	कारखानों में बच्चों के रोजगार का निषेध
	धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार
25.	अंत:करण, तथा धर्म के प्रकटन, अभ्यास एवं प्रचार-प्रसार की स्वतंत्रता
26.	धार्मिक मामलों के प्रबंधन की स्वतंत्रता
27.	किसी विशेष धर्म को प्रोत्साहित करने के लिए कर भुगतान की स्वतंत्रता
28.	कुछ शैक्षणिक संस्थाओं में धार्मिक निर्देशों अथवा धार्मिक उपासना के लिए उपस्थित होने की स्वतंत्रता
	सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक अधिकार
29.	अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण
30.	अल्पसंख्यकों को अपनी शैक्षणिक संस्था खोलने और चलाने का अधिकार
31.	सम्पत्ति का अनिवार्य अधिग्रहण (निरस्त)
	कुछ कानूनों की सुरक्षा
31.A	सम्पदा के अधिग्रहण के लिए कानून की सुरक्षा
31B	कुछ अधिनियमों एवं विनियमनों की वैधता
31C	नीति-निदेशक सिद्धांतों पर प्रभाव डालने वाले कानूनों की सुरक्षा
31D	राष्ट्र-विरोधी गतिविधियों से सम्बन्धित कानूनों की सुरक्षा (निरस्त)

अनुच्छेद	विषय-वस्तु
	संवैधानिक उपचारों का अधिकार
32.	इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों को लागू करने से सम्बन्धित उपचार
32.A	अनुच्छेद 32 के अंतर्गत राज्य-कानूनों की संवैधानिक वैधता पर विचार नहीं (निरस्त)
33.	इस भाग द्वारा प्रदान किए गए अधिकारों को संशोधित करने की संसद की शक्ति
34.	इस भाग द्वारा प्रदत्त पर उन स्थितियों में रोक जबकि किसी स्थान पर सैन्य शासन लगा हो
35.	इस भाग के प्रावधानों को प्रभावी बनाने सम्बन्धी विधायन

संदर्भ सूची

1. 'मैग्ना कार्टा' अधिकारों का वह प्रपत्र है, जिसे इंगलैंड के किंग जॉन द्वारा 1215 में सामंतों के दबाव में जारी किया गया। यह नागरिकों के मूल अधिकार से संबंधित पहला लिखित प्रपत्र था।
2. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973)।
3. विधि के समक्ष समानता के संबंध में डायसी महसूस करते हैं कि 'कानून से ऊपर कोई भी व्यक्ति नहीं है, लेकिन कोई व्यक्ति चाहे वह किसी श्रेणी या स्थिति का हो उसे भी साधारण कानून के तहत उसके साथ समान व्यवहार किया जाएगा। कोई भी अधिकारी प्रधानमंत्री से लेकर कांस्टेबल तक या एक कर संग्राहक तक कानून के समक्ष सभी समान नागरिक हैं' (एवी डायसी, *इंट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ द ला ऑफ द कांस्टीट्यूशन,* मैकमिलन प्रकाशन, 1931 संस्करण पृष्ठ 183-191)।
4. दूसरी व्यवस्था को पहले संशोधन अधिनियम, 1951 के द्वारा जोड़ा गया।
5. 32वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1973 के अंतर्गत इसमें अनुच्छेद 371घ को सम्मिलित किया गया।

5a. अनुच्छेद 371D को आन्ध्र प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2014 द्वारा तेलंगाना राज्य तक विस्तारित किया गया है।

6. 1953 में काका कालेकर की अध्यक्षता में पहला पिछड़ा वर्ग आयोग गठित किया गया। इसने अपनी रिपोर्ट 1955 में प्रस्तुत की।
7. 1963 में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि एक ही वर्ष में सरकारी नौकरियों में 50 प्रतिशत से ज्यादा आरक्षण असंवैधानिक है।
8. *इंदरा साहनी* बनाम *भारत संघ* (1922)।
9. तमिलनाडु पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (राज्य सरकार के अधीन शैक्षणिक संस्थाओं और पदों या नियुक्त के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994।
10. *बालाजी राघवन* बनाम *भारत संघ* (1996)।

10a. सहकारी समितियों का प्रावधान 97 वें संविधान संशोधन अधिनियम 2011 में किया गया।

10b. वही

11. *ए.के. गोपालन* बनाम *मद्रास राज्य* (1950)।
12. *मेनका गांधी* बनाम *भारत संघ* (1978)।

12a. संविधान (अट्ठासीवाँ संशोधन) अधिनियम, 2022 तथा बच्चों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा अधिनियम, 2009 दिनांक 1 अप्रैल, 2010 से प्रभावी हुए।

13. मूलत: इसे स्त्री तथा लड़की अनैतिक व्यापार दमन (संशोधन) अधिनियम, 1956 के रूप में जाना जाता है।
14. इस धारा में हिन्दू का संदर्भ सिख, जैन एवं बौद्ध धर्म से संबंधित होगा (अनुच्छेद 25)।

14a . सचिव, महलनकरा सीरियल कैथोलिक कॉलेज बनाम टी. जोस (2004)

15. दूसरी व्यवस्था को 15वें संविधान संशोधन अधिनियम 1963 के तहत जोड़ा गया।
16. पहले संविधान संशोधन अधिनियम 1951 द्वारा जोड़ा गया और चौथे, 17वें और 44वें संशोधनों के जरिये संशोधित किया गया।
17. शब्द 'संपदा' का तात्पर्य जागीर, इनाम, मुआफी एवं अन्य समान अनुदान कोई जमाम एवं तमिलनाडु और केरल आदि में कृषि उद्देश्य के लिए निहित भूमि से है।
18. नौवीं अनुसूची के साथ अनुच्छेद 31ख को पहले संविधान संशोधन अधिनियम, 1951 के द्वारा जोड़ा गया।

18a. आई.आर. कोएल्हो बनाम तमिलनाडु (2007)

19. *केशवानंद भारती* बनाम *केरल राज्य* (1973)।
20. यद्यपि अंतिम प्रविष्टि संख्या 284 थी, वास्तविक संख्या है 282 ऐसा इसलिए क्योंकि तीन प्रविष्टियों (87, 92 और 130) को मिटा कर नई प्रविष्टि 257क को शामिल किया गया।
21. अनुच्छेद 39ख में कहा गया है, राज्य अपनी नीति का इस प्रकार संचालन करेगा कि समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो, जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो।
22. अनुच्छेद 39ग कहता है — राज्य अपनी नीति का इस प्रकार संचालन करेगा कि आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले जिससे धन और उत्पादन-साधनों का सर्वसाधारण के लिए अहितकारी संकेन्द्रण न हो।
23. *केशवानंद भारती* बनाम *केरल राज्य* (1973)।
24. *मिनर्वा मिल्स* बनाम *भारत संघ* (1980)।
25. सर आइवर जेनिंग ने लिखा है, ''इसके अंतर्गत 19वीं सदी का स्वतंत्रता आंदोलन चलता है। परिणामस्वरूप इसमें ब्रिटेन में राजनीतिक समस्या पैदा हुई। ब्रिटिश शासन में विपक्ष के पास खराब अनुभव रहे और वहां सामाजिक संस्थाओं में सुधार की गवाह बनी भारत की परिस्थितियां परिणामस्वरूप 24 अनुच्छेदों में जटिलता दिखी, उनमें से कुछ लंबे, व्यापक एवं जटिल कानूनी मामलों के आधार पर बने।''